

सुद्रक—

कुन्ददास गुप्त 'प्रभाकर'

इम टेबुल प्रेस, बनारस ।

निवेदन

‘हालॉ कालॉ रा कुँडळिया’ हिंगल भाषा के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में से है । यह ग्रंथ जितना भाषा कविता की दृष्टि से उत्तम है उतना ही लोक प्रिय भी है । राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा अभाग चारण मिलेगा जिसे इसके दो एक पद्य कठाग्र न हों । राजपूत आदि कुछ अन्य जातियों के लोगों में भी इसका यथेष्ट आदर है ।

आज से कोई पंद्रह वर्ष पूर्व, सन् १९३५ ई० में, इस ग्रंथ की एक हस्तालिखित प्रति पहली बार मेरे देखने में आई थी । इसकी भाव-मौलिकता और भाषा सुन्दरता को देखकर मैं चकित रह गया और उसी समय से इसको प्रकाश में लाने का इरादा हुआ । परन्तु अन्य अधिक आवश्यक साहित्यिक कार्यों में व्यस्त होने की वजह से इसके संपादन का कार्य हाथ में न ले सका । लेकिन इसकी प्राचीन लिखित प्रतियों की टोह में बराबर रहा । फल-स्वरूप इसको तेरह प्रतियाँ मुझे देखने को मिलीं जिनमें कुछ अधूरी अथवा अशुद्ध लिखी हुई थीं और कुछ में लिपिकाल का उल्लेख नहीं था तथा शकल-सुरत से बहुत आधुनिक मालूम पड़ती थीं । केवल पाँच प्रतियाँ ऐसी थीं जिनको मैंने प्रामाणिक एवं अपने काम के लिये उपयोगी पाया और इन्हीं के आधार पर प्रस्तुत संस्करण तैयार किया गया है । इन पाँचों प्रतियों का सक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है—

A: उदयपुर के महंत श्री प्रयागदासजी के अस्थल की प्रति । प्राप्त प्रतियों में यह सबसे प्राचीन है । गुटकाकार है और घसीट लिपि में

लिखी हुई है। इसके अक्षर भद्दे पर पाठ प्रायः शुद्ध है। इसमें ५० पद्य हैं। यह मेवाड़ के महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के शासन-काल में उदयपुर में लिखी गई थी। इसका लिपि काल स० १६९८ है। इसमें ईसरदास की भाषा कविता बहुत-कुछ अपने मूल रूप में सुरक्षित है।

R. स्वर्गीय पंडित रतीलालजी अताणी की प्रति। यह प्रति पक्षी कालीस्याही से पुराने बाँसी कागज़ पर लिखी हुई है। घलीट गुजराती लिपि में होने से इसके पढ़ने में कुछ कठिनाई होती है। यह राजनगर (अहमदाबाद) में लिपिबद्ध हुई थी। इसमें भी ५० पद्य हैं। इसका लिपिकाल स० १७३६ है।

C : कलकत्ते के सुप्रसिद्ध सेठ सूरजमल नागरमल के पुस्तकालय की प्रति। यह प्रति हमें रायबहादुर सेठ श्री रामदेवजी चौखाणी के सौजन्य से देखने को मिली। इसकी लिपि सुस्पष्ट और सुन्दर है। पाठ भी प्रायः शुद्ध है। कहीं-कहीं छद्मोभंग है। इसमें केवल ३० पद्य हैं। इसका लेखन-समय स० १८०५ है।

D . देवलिया प्रतापगढ़ की प्रति। यह प्रति बहुत साफ़ लिखी हुई है। इसमें छद्मोभंग प्रायः नहीं है। यह प्रतापगढ़-निवासी जुम्मारसिंह नामक किसी चौहाण सरदार के पठनार्थ स० १८८१ में लिखी गई थी। इसके लेखक का नाम रौढ़जी था। इसमें भी ५० पद्य हैं।

S . उदयपुर के सरस्वती भण्डार की प्रति। यह सजिन्द और पुस्तकाकार प्रति है। इसकी लिखावट बहुत सुन्दर है। इसकी पद्य-संख्या ५३ है। इसमें लिपिकाल का उल्लेख नहीं है। पर यह मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह (सं० १९३१-४१) के लिए लिखी गई थी। अतः इसका लेखन-समय स० १९३१ और सं० १९४१ के बीच में बहता है।

प्रायः देखा गया है कि जो ग्रंथ जितना अधिक लोक-प्रचलित होता है उसकी हस्तलिखित प्रतियों में उतना ही अधिक पाठान्तर भी मिलता

है। क्योंकि अपनी रुचि एवं उच्चारण की सुविधा के अनुसार लोग उसमें परिपर्तन करते रहते हैं और उसका मूल रूप बराबर विकृत होता रहता है। ऐसे ग्रंथ के संपादन के समय पाठ-निर्धारण में बड़ी कठिनाई होती है और ठीक पाठ को चुनना बहुत दुष्कर हो जाता है। मुझे भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ा और कहीं-कहीं तो ठीक शब्द के चुनने में कई घंटे लगा गये। यथा—

“सेल धमोदा किम सखा, किम सहिया गज दंत।”

‘धमोदा’ के स्थान पर S प्रति में ‘धमका’, R प्रति में ‘धमका और D प्रति में ‘धमाका’ शब्द देखने में आये। ये चारों ही शब्द प्रायः समानार्थी हैं और प्रयोग में ठीक बैठते हैं। ऐसे स्थानों पर मैंने सबसे प्राचीन A प्रति का आश्रय लेना उचित समझा और अधिकतर उसी के पाठ को ग्रहण किया है।

पुस्तक विश्व-विद्यालयों के पाठ्यक्रम में भा रखी जायगी यह सोचकर मैंने शब्दार्थ, भावार्थ, टीका-टिप्पणी इत्यादि देकर इसे विद्यार्थियों की दृष्टि से उपयोगी बनाने को भरसक चेष्टा की है। प्रारंभ में मूलिका लगा दी है जिसमें ईसरदास की जीवनी एवं हम ग्रंथ की विशेषताओं आदि पर प्रकाश डाला गया है। अंत में शब्द-कोश जोड़ दिया है।

इतना संकष्ट और लोकविषय होते हुए भी यह ग्रंथ क्यों अभी तक अप्रकाशित पड़ा रहा, यह बात मेरी समझ में नहीं आ रही थी। लेकिन अब आ गई। ग्रंथ कुछ कठिन है। इसलिए संपादन के लिये इसे हाथ में लेने की हिम्मत किसी की न हुई। यदि किसी ने कभी कोशिश की भी होगी तो उसे बीच ही में छोड़नी पड़ी। राठौड़ पृथ्वीराज हून ‘बेलि किन्तन रुक्मणोरी’ शिवाल भापा का एक बहुत ही कठिन ग्रंथ माना जाता है। परन्तु यह ग्रंथ उससे भी कठिन है। इनमें भापा और भाव लेने की कठिनता है। लेकिन ईश्वर की अनुकंपा से यह कठिन

अब दूर हो गई है और डिगल काव्य-प्रेमी 'सजन' इसका आस्वादन कर सकेंगे इसकी मुझे अत्यन्त खुशी है ।

अंत में गुजरात काठियावाड़ के सुप्रसिद्ध विद्वान, भूतपूर्व सहकारी संपादक 'चारण,' श्रीमान् ठाकुर खेतसिंहजी मिश्रण को धन्यवाद देना भी मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की प्रेस कॉपी को आद्योपान्त पढ़ा और अनेक स्थानों पर सुधार-संशोधन किया एवं अर्थ-स्पष्टीकरण में मेरी सहायता की । यदि ठाकुर साहब मेरी मदद न करते तो यह ग्रंथ कुछ दिन और अमुद्रित पड़ा रहता । इस सौजन्य के लिए मैं ठाकुरसाहब का अत्यंत आभारी हूँ ।

उदयपुर (मेवाड़)
ता० १२-१-५० }

मोतीलाल मेनारिया

भूमिका

चौदहवीं शताब्दी की बात है। मारवाड़ में राव धूहड़ (सं० १३४९-६६) राज्य करते थे। उन दिनों चंद नाम का एक व्यक्ति वहाँ रहता था। उसका पिता भाटो राजपूत और माँ जाति की चारण थी। राव धूहड़ ने उसे अपना पोलपात^१ बनाया और बारह गाँव जागीर में दिये। चंद को उसकी इच्छा के विरुद्ध, रोहड़कर (ज़बरदस्ती), पोलपात बनाया गया था। इसलिए उसकी संतान रोहड़िया कहलाने लगी। बाद में राव धूहड़ के पुत्र राव रायपाल (सं० १३६६-७०) ने इन्हें बारहठ^२ का उपटेक प्रदान किया और ये रोहड़िया बारहठ नाम से पुकारे जाने लगे। तभी से रोहड़िया बारहठ राठौड़ों के पोलपात बने हुए हैं और राजस्थान के चारणों में बहुत प्रतिष्ठित माने जाते हैं—

सोदा नै सोसोदिया, रोहड़ नै राठौड़ ।

दुरसावत नै देवड़ा, ठावा ठावा ठौड़ ॥

१ द्वार पर दान लेने का अधिकारी चारण ।

२ बारहठ उन चारणों को कहते हैं जिनको राजपूत लोग अपनी पोल का नेग देते हैं। जब दुलहा विवाह करने के लिए भाता है तब दुलहिन के पिता का पोलपात चारण उनके दरवाजे पर खड़ा रहता है। दुलहा जिस हाथी अथवा घोड़े पर चढ़कर तोरण बजाता है उस हाथी अथवा घोड़े को लेने का अधिकार उस चारण का होता है। 'बार' दरवाजे को कहते हैं। और दरवाजे पर बैठ करके नेग लेने वाला चारण बारहठ कहलाता है। डिगल साहित्य में प्रयुक्त 'बारठ' 'बारैठ' आदि शब्द इसी 'बारहठ' के रूपान्तर हैं।

चद से सातवीं पीढ़ी में ईसरदास हुए। ये भगवान के परम भक्त और प्रतिभावान पुरुष थे। इनका जन्म मारवाड़ राज्य के भाद्रेश नामक गाँव में स० १५९५ में हुआ था जिसकी साक्षी का यह दोहा प्रसिद्ध है—

पनरासौ पिच्चाणवै, जनम्यौ ईसरदास।

चारण वरण चकार मैं, उण दिन हुवौ उजास ॥

इनके पिता का नाम सूजाजी, पितामह का गोधाजी और प्रपितामह का अमराजी था। डिंगल भाषा के सुप्रसिद्ध कवि हरसूर इनके बड़े काका और आशानद छोटे काका थे।

ईसरदास को उम्र जब घठारह वर्ष की थी तब इनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। इसलिए इनके काका आशानद ने इन्हें पढ़ा-लिखाकर होशियार किया और डिंगल भाषा में कविता करना भी सिखाया।

कोई २०-२१ वर्ष की उम्र में ईसरदास अपने काका आशानद के साथ द्वारका की यात्रा के लिए घर से निकले। रास्ते में जामनगर पहुँचा था। रात्रि को दोनों वहाँ जाकर टिके। उन दिनों वहाँ रावळ जाम (स० १५६१-१६१८) राज करते थे। वे बड़े गुणग्राही और सरस्वती-उपासक थे। उनको जब मारवाड़ के इन दो प्रसिद्ध कवियों के आने की सूचना मिली तब उन्होंने इन्हें अपने राज दरबार में बुलाया और बड़ी आदरभक्ति की। कुछ दिन ये रावळजी के मेहमान रहे। फिर द्वारका चले गये।

द्वारका से वापस लौटने पर रावळ जाम ने ईसरदास को स्थायी रूप से अपने पास रख लिया। उन्होंने इन्हें अपना पोलपात बनाया और क्रोड़पसाब^३ तथा सचाणा नामक एक गाँव प्रदान कर इनकी

३ प्राचीन समय में चारण भाटों को जो दान दिया जाता था उसे वे भृत्यत्ति में लाख पस व, क्रोड़ पमात्र आदि कहते थे। पूरा दान नकद रूपों

५ तिछा बटाई। इस विषय का एक दोहा लोगों में प्रचलित है जिसे ईसरदास रचित बतलाया जाता है। दोहा यह है—

क्रोड़ पसाव ईसर क्रियौ, दियौ सचौणौ गाम ।

दत्ता सिरोमण देखियौ, जगसर रावळजाम ॥

जामनगर में रहने से ईसरदास को अतुल यशसंपत्ति ही नहीं मिली, बल्कि ज्ञानोपार्जन की दृष्टि से भी भरपूर लाभ हुआ। रावळ-जाम के दरबार में पोताम्बर भट्ट नाम के एक पंडित अधिवास करते थे। वे संस्कृत भाषा के प्रकांड विद्वान और दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि के असाधारण ज्ञाता थे। उन्होंने इन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान कराया और भागवत आदि पुराण पढ़ाये। अपने रचे 'हरिरस' में ईसरदास ने पोताम्बर भट्ट के आभार को स्वीकार किया है—

लागूँ हूँ पहली लुळे, पोताम्बर गुर पाय ।

भेद महारस भागवत, ग्रामूँ जास पसाय^४ ॥

ईसरदास कोरे कवि और विद्वान् ही न थे, भक्त भी थे। कहते हैं कि इनको कुछ ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त थीं जिनके बल से ये मरे हुए व्यक्तियों को जिला देते थे। इस सम्बन्ध की कुछ दत्तकथाएँ भी गुजरात, काठियावाड़ और राजस्थान के लोगों के मुँह से सुनने में आती हैं। एक दत्तकथा हम यहाँ देते हैं।

एक बार ईसरदास जामनगर से अमरेली जाते हुए रास्ते में वेणू

में नहीं दिया जाता था। दजार-दो दजार के करोड़ रोक्ड़ रुपया देकर शेष रकम की पूर्ति जमीन, हाथी, घोड़े, सिरोपाव आदि देकर को जाती थी। छोटा दान लाखपसाव, उससे बड़ा क्रीड़पसाव और सबसे बड़ा अड़वपसाव कहलाता था। 'पसाव' शब्द संस्कृत 'प्रसाद' का उगतर है।

४ जिसकी कृपा से मैंने भगवत् संबंधी महारस का भेद प्राप्त किया उस पोताम्बर गुरु के चरणों को मैं सवने पहल भुज्जर स्पर्श करता हूँ।

नदी के किनारे एक छोटे से गाँव में साँगा नामक एक राजपूत के यहाँ ठहरे। साँगा ने इनकी बड़ी आवश्यकता की और जब ये वहाँ से आगे जाने लगे तो उसने इनसे कहा कि मैं बहुत गरीब हूँ और आपको भेंट में देने योग्य कोई वस्तु मेरे घर में नहीं है। केवल एक कंघल है जिसे मैं आपको देना चाहता हूँ। ईसरदास ने कहा कि उस कंघल को वापस लौटते समय हम तुमसे ले जायेंगे। तैयार रखना। यह कहकर वे वहाँ से रवाना हो गये।

इसी बीच में ऐसा हुआ कि एक दिन संध्या को जब साँगा अपने पशुओं को जंगल में चराकर घर लौटते समय वेणू नदी को पार कर रहा था तब नदी में बाढ़ आ गया और वह और उसके पशु उसमें बह गये। साँगा ने बाहर निकलने के लिए बहुत हाथ-पाँव पटके पर उसकी एक न चली। अंत में जब उसने देख लिया कि उसकी मृत्यु निश्चित है तब उसने नदी के किनारे पर खड़े अपने ग्राम-वासियों से चिल्लाकर कहा कि मैं मर रहा हूँ पर मेरे मन में एक इच्छा रह गई है। वह यह कि अपने चादे के मुताबिक ईसरदास को मैं कंघल न दे सका। परंतु तुम लोग घर पहुँचकर मेरी माँ से कह देना कि ईसरदास के लिए जो कंघल रखा हुआ है वह उनके वापस लौटने पर उन्हें दे दे। यह कहते कहते साँगा की साँस टूट गई और वह पानी में डूब गया।

इस घटना के कुछ दिन पश्चात् ईसरदास साँगा के घर पहुँचे। साँगा की माँ ने उनके लिए भोजन तैयार किया। परंतु भोजन के आसन पर बैठने के पहले ईसरदास ने पूछा कि साँगा कहाँ है, मैं उसके साथ बैठकर भोजन करूँगा। यह सुनकर साँगा की माँ का कलेजा भर आया। वह टपाटप आँसू गिराने लगी। अंत में साँगा की दुखद मृत्यु की सारी घटना उसने ईसरदास को सुना दी। सुनकर ईसरदास बोले—“मुझे वह स्थान बताओ जहाँ साँगा डूबा है”। माँ ने साथ जाकर वह स्थान उन्हें बताया दिया। वहाँ खड़े होकर ईसरदास ने जोर से पुकारा—“साँगा !

तुम कहों हो। तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार मैं तुमसे कम्बल लेने आया हूँ। आकर कम्बल मुझे दो और अपना वादा पूरा करो”। सामने से आवाज़ आई - “आ रहा हूँ”। और थोड़ी देर में सौंगा अपने पशुओं सहित आता हुआ दिखाई दिया। आकर उसने ईसरदास के पाँव पकड़ लिये। फिर दोनों घर गये और साथ बैठकर भोजन किया। इस घटना से संबंधित कुछ दोहे भी प्रचलित हैं। चार दोहे यहाँ दिये जाते हैं—

नदी बहती जाय, सादज सौंगरिए दियौ।

कह्यौ ग्हारी माय कवि नै दोजै कामळो ॥१॥

बाहण^५ बहती जाय, साद दियतौ साधियौ।

कह्यौ जायर माय, कवि नै देवै कामळी ॥२॥

बहती नद पाणोह, सौंगरिए दोधौ सबद।

कामळ सहनाणोह, दीजौ ईसरदास नै ॥३॥

ईसर री आवाज, सौंगा जळ थळ सौमळे।

कामळ देवण राज, वेगौ बळसिध कर वयण^६ ॥४॥

इस तरह की और भी कुछ दन्तकथाएँ लोगों में प्रचलित हैं। परन्तु उनको यहाँ देना व्यर्थ है क्योंकि उनमें सार की बात कुछ नज़र नहीं आती। वे भावुक भक्त लोगों के मतलब की हो सकती हैं। तथ्यान्वेषी अध्ययताओं के काम को नहीं हैं।

५. बाहण = बहने वाली, नदी।

६. नदी में बहकर जाते हुए सौंगा ने आवाज़ दी कि मेरी माँ से कहना कि वह कवि को कंदल दे दे ॥१॥ नदी में बहकर जाते हुए सौंगा ने अपने साधियों को आवाज़ दी कि जाकर मेरी माँ से कहना कि वह कवि को कंदल देवे ॥२॥ नदी में बहते हुए सौंगा ने आवाज़ दी कि रघु-चिह्न स्वरूप कन्दल ईसरदास को दे देना ॥३॥ हे माँगा ! ईसरदास की आवाज़ को बल-थल में सुनकर कम्बल देने के लिए जल्दी बापम लौट और अपने वचन को पूरा कर ॥४॥

ईसरदास ने दो विवाह किये थे । इनसे इनके पाँच लड़के हुए—
जगजी, चूँडाजी, कान्हजी, जैसाजी, और गोपालजी^७ ।

लगभग चालीस वर्ष तक ईसरदास जामनगर में रहे । तदनंतर अपने
सन्मस्थान भाद्रेस चले गये और गुड़ा के पास लूणी नदी के किनारे एक
छुटिया बनाकर वसमें रहने लगे । वहीं स० १६७५ के आस पास ८० वर्ष
की आयु में इनका देहावसान हुआ ।

ईसरदास भक्त कवि थे । इन्होंने ईस-भक्ति विषयक रचना अधिक
की है । इनके रचे ग्रंथों के नाम ये हैं—

- (१) हरिरस
- (२) छोटा हरिरस
- (३) बाल लीला
- (४) गुण भागवत हस
- (५) गरुड पुराण
- (६) गुण आगम
- (७) निंदा-स्तुति
- (८) वैराट
- (९) रास कैलास
- (१०) सभापर्व
- (११) देविमाया
- (१२) हालीं क्षालीं रा कुँडलियाँ^८

७ 'श्री यदुवंश प्रकाश' में ईसरदास के घूना नामक एक और पुत्र का
का उल्लेख है । परन्तु अन्य इतिहास-ग्रंथों से इसकी पुष्टि नहीं होती ।

८ वदयपुर क सरस्वती भंडार में ईसरदास नामक किसी कवि के लिखे
हुए छह छोटे छोटे ग्रंथ सुरक्षित हैं । इनके नाम ये हैं—गुरु महिमा, मनशिखा,
विरह विलाप, विरह वेदना, करुणारम और फुटकर पद । इन ग्रंथों की रचना-

इनमें 'हालाँ हालाँ रा कुँहळिया' ईसरदास की सर्वोत्कृष्ट कृति है। यह हिंगल भापा के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों में से है। इसकी रचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित किंवदन्ती प्रसिद्ध है।

एक बार हलवद^१-नरेश भाला रायसिंह भोल^२ राज्य के ठाकुर हाला जसाजी से मिलने के लिए भोल गये। ये उनके भानजे होते थे^३। एक दिन दोनों बैठकर चौपड़ खेलने लगे। इतने में कहीं से नगाड़े की आवाज़ इनके कानों में पड़ी। सुनकर जसाजी क्रोध से झुठा उठे और बोले—“यह ऐसा कौन जोरावर है जो मेरे गाँव की सोमा में नगाड़ा बजा रहा है?” फौरन नौकर को भेजकर पता लगवाया गया। नौकर ने आकर कहा—“हूजूर! मरुनभारती (मुकुन्द भारती) नामक दिल्ली के किसी मठाधीश की जमात हिंगलाज की यात्रा को जा रही है और उसो का नगाड़ा बज रहा है।” यह सुनकर जसाजी बोले—“तब कोई हज़ा नहीं है। नगाड़ा बजने दो।”

शैली हमारे इन बारहठ ईसरदास की रचना-शैली से मिलती है। परंतु इनमें कहीं कवि वा परिचय दिया हुआ नहीं है। और न नाम के भागे बारहठ आदि लिखा हुआ है। अतः यह कहना कठिन है कि ये दोनों दो भिन्न व्यक्ति हैं अथवा एक।

१ हलवद राज्य का साधुनिक नाम प्रांगघ्रा में राजधानी होने के कारण प्रांगघ्रा है। भाला राजपूतों का यह राज्य काठियावाड़ में है।

२ भोल राज्य भी काठियावाड़ में है। यह जाडेजा राजपूतों का राज्य है। जाडेजा राजपूतों को हालाजी के वंशज होने के कारण 'हाला' भी कहते हैं।

३ 'श्री यदुवंश प्रकाश' में रायसिंह की माया और जसाजी की भानजा बताया गया है जो सत्य है।

झाला रायसिंह अभी तक चुपचाप बैठे थे। जसाजी के अन्तिम वाक्य को सुनकर कहने लगे—“यह तो गाँव का रास्ता है। सेकड़ों आदमी आते जाते रहते हैं। नगाड़े भी बजते ही हैं। इसमें नाराज होने की कौन सी बात है? यदि यह किसी जमात का नगाड़ा न होकर किसी राजा का नगाड़ा होता तो आप क्या कर लेते?” जसाजी ने उत्तर दिया—“मैं उन नगाड़ों को तुड़वा कर फिंकवा देता। मेरे राज्य में किसी दूसरे राजा का नगाड़ा नहीं बज सकता।”

यह गर्वोक्ति रायसिंह को चुभ गई। बोले—“अच्छी बात है। युद्ध के लिए तैयार रहिए। इसी गाँव में झाला रायसिंह का नगाड़ा बजेगा।” चौपड़ खेलना बंद हो गया। रायसिंह उठकर हलवद चले गये।

अपनी प्रतिज्ञानुसार कुछ दिनों बाद रायसिंह अपने दलबल सहित धोळ जा पहुँचे और नगाड़ा बजाया। अपने भानजे पर हथियार उठाना अनुचित समझ कर जसाजी ने उन्हें बहुत समझाया-बुझाया और वापस लौट जाने को कहा। परन्तु उन्होंने एक न सुनी। निदान जसाजी को रणभूमि में उतरना पड़ा। भारी युद्ध और भयकर कटाकटी हुई। अंत में जसाजी वीरता से लड़ते हुए काम आए और रायसिंह के भी बहुत से घाव लगे। यह घटना स० १६२० की है।

कहते हैं कि युद्धारम्भ से पहले जसाजी और रायसिंह दोनों ईसरदास के पास गये और युद्ध का आँखों देखा वृत्तान्त लिखने के लिए उनसे प्रार्थना की। पहले तो वे मना कर गये पर बाद में बहुत कहा सुनी करने पर मजूर कर लिया। फल स्वरूप ‘हालों झालों रा कुँडलिया’ की रचना हुई जिसने जसाजी, रायसिंह और ईसरदास तीनों के नाम को अमर कर दिया है।

जसाजी और रायसिंह लड़े थे, यह लड़ाई स० १६२० में हुई थी और जसाजी इस क्षद्वेप में मारे गये थे, ये बातें सही हैं और इतिहास-ग्रंथों में इनका उल्लेख मिलता है। परन्तु इस लड़ाई का जो कारण

अद्विखित किवंदंतों में बताया गया है वह कुछ शकास्पद है और इसके संबंध में विद्वानों में मतभेद भी है। इसमें संदेह नहीं कि इस तरह के सुख कार्यों को लेकर हुए युद्धों के अनेक 'उदाहरण' राजपूत जाति के इतिहास में मिलते हैं। परन्तु केवल इसीलिए इसको भी स्वीकार कर लेना कुछ अनुचित जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में कुछ अधिक ध्यान-बोध की आवश्यकता है। गुजरात—काठियावाड़ के विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

इधर कुछ दिनों से विद्वानों में यह चर्चा चल पड़ी है कि यह 'प्रिय, हाजी शाला रा कुबलिया, ईसरदास' का लिखा हुआ नहीं है, उनके काका आशानंद का बनाया हुआ है। इस धर्चा का सूत्रपात पहले-पहल स्वर्गीय कुर किशोरसिंह बारहठ ने किया था। अपने सम्पादित 'हरिस' की स्तवना में उन्होंने जो शब्द इस विषय में लिखे हैं उनको हम ज्यों के त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं। वे शब्द ये हैं,—

"राजपूताना प्रान्त में यह बात प्रसिद्ध है कि 'सुर संतसई' जिसको लौ शाला रा कुबलिया' भी कहते हैं बारहठ ईसरदास ही का रचना या हुआ काव्य-ग्रंथ है। परन्तु काठियावाड़ में उसको उनके चाचा काव्य आशानंद रचित माना जाता है। जब मुझको अपनी सौराष्ट्र-यात्रा में यह बात मालूम हुई तब मैंने उस काव्य को आशानंद की कविता से मिलाकर जोचा। तुलना करने से मुझको काठियावाड़-निवासी विद्वानों की सम्मति उचित जान पड़ी। क्योंकि ईश्वरदास की कविता केवल मस्तरिस और प्रसादगुणयुक्त है, ओज तो उसमें नाममात्र को भी नहीं है। वरर आशानंद की कविता ओज से गुण्य अति-प्रति है और हाजी शाला रा कुबलिया' उनकी उतर कविता से पूर्णतः मिलती है। राजपूताना में इस संबंध में जो भ्रम फैला हुआ है उसका कारण यह प्रतीत होता है कि ईसरदास को काठियावाड़-निवासी ईशानंद भी कहा करते हैं। इसलिए आशानंद के साथ ईशानन्द का शब्द साम्य होने

से तथा ईसरदास के जाठियावाड़ से अधिक रहने से यहाँ के लोगों का ऐसा विश्वास हो गया ।”^{१२}

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ‘हालाँ छाळाँ रा कुंठलिया’ को ईसरदास रचित न मानने का आधार केवल पारदहली का अनुमान है, कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं । परन्तु इसका यह अनुमान भी अमात्मक है जिसमें निम्नलिखित कारण है ।

(१) यह ईसरदास की एक अत्यंत लोक प्रिय रचना है । इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान के विभिन्न पुस्तकालयों, राजमंडारों, रामद्वारों, चारण-भाटों के घरों आदि में देखने को मिलती हैं । तेरह प्रतियाँ हमारे भी देखने में आई हैं । इन सभी में ईसरदास का नाम दिया हुआ है । इनमें एक प्रति छाफ़ी प्राचीन है । यह उदयपुर के प्रयागदासजी के स्थान में सुरक्षित है इसका पुष्पिका—लेख इस प्रकार है—

“इतो ओ हाळाँ आळाँ रा कुंठलियाँ ईसरदास बाबठ चारण
क्रीत ॥ संपुरण ॥ समाप्त ॥ पोथी जोखत सगत रामदास घमंडीजी
प्रतापे पठनार्थ राठौड़ भाणजी खाखान सुत उदयापुर (र) मध्ये राणा
ओ नगतस्यंघजी बीजे राजमस्तु कल्याणमस्तु आयुर्बलरस्तु सुमंभव ॥स०
१६९८ ज्येष्ठमास अषाढ़ वद ११ पुष्यवार सुम दिने ॥ श्लोक अरज भाव ॥
जदि अछरं पदंओष्टं मात्रा होमं जदि अवे । सर्वं मता देवं प्रसीध
प्रमेखरं ”॥

ईसरदास का देहान्त सं० १६७९ के लगभग हुआ था । इस
हिस्सा से यह प्रति उनकी मृत्यु होने के २१ वर्ष बाद की लिखी हुई
है । इससे स्पष्ट है कि बहुत प्राचीन काल से यह ग्रंथ ईसरदास-रचित
माना जाता आ रहा है और राजपूताना प्रान्त में जो इसे ईसरदास का
बनाया हुआ बतलाया जा रहा है वह आधार-शून्य नहीं है ।

(२). डा० किशोर सिंहजी ने इसे इसलिये भी ईसरदास-रचित नहीं माना है कि काठियावाड़ में इसको उनके चाचा महाकवि आशानंद रचित माना जाता है। काठियावाड़ में क्यों और कौन इसे आशानंद का बनाया हुआ बतलाते हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख किशोर सिंहजी ने अपने अपरोक्त लेख में नहीं किया। संभव है, उधर के कुछ लोगों की ऐसी धारणा हो पर उधर के सभी विद्वान् ऐसा नहीं मानते। उदाहरण के लिए हम राज कवि भावदानजी-मीमजी भाई रतनू को लेते हैं। अपने लिखे 'श्री यदुवंश प्रकाश अने जामनगर नो इतिहास' में उन्होंने 'हाजो आजो रा कुँडलिया' के कुछ अंश उद्धृत किये हैं और उन्हें ईसरदास-रचित बतलाया है।^{१३}

प्राचीन समय में भी यह त्रय काठियावाड़ की तरफ ईसरदास-रचित माना जाता था इसका पता एक दूसरी प्राचीन लिखित प्रति से मिलता है जो काठियावाड़ ही के आस पास लिखी गई थी। यह प्रति स्वर्गीय पंडित रतोजीजी धंठाणी के पुस्तकालय में वर्तमान है। यह राज नगर (अहमदाबाद) में लिपि बद्ध हुई थी। इसका लिपि-क्राज सं० १७२६ है—

“इति श्री ईसरदास कृत हाजो आजो रा कुँडलिया संज्ञा। ‘सं० १७२६ चैत्र सुदी ९ बने वार भोमवासरे श्री राजनगर मध्ये लखी कृत’।

(३) डा० किशोरसिंह जी का यह कथन भी कि ‘ईसरदास की कविता केवल भक्तिरस और प्रसादगुण युक्त है’, पूर्ण सत्य नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि ईसरदास ने भक्ति और शान्तरस की कविता अधिक लिखी है। पर इनके लिखे वीररस के फुटकर गीतादि भी कई मिलते हैं जो बहुत भोज पूर्ण हैं और जिनकी भाषा एवं बंदिश ‘हाजो आजो रा कुँडलिया’ से मिलती है। उदाहरण स्वरूप हजबद के राजा राजसिंह की प्रशंसा में लिखा हुआ उनका एक गीत हम यहाँ देते हैं—

१) खेधे लग खत्री खदग हय खारा^१ मद ही इन्द्र समा मिलिया^२ ।
 भीगी वार सरग पर वेऊ^३ साहेब—रासौ साँफलिया^४ ॥
 हयि कज यळा ओधि कज अपछर^५ सूरन सकिया करी समास^६ ॥
 कदतल राण रायधण कीधौ^७ कलह बली दूजौ कविलास^८ ॥
 दादा अमर हुवा अणियारौ^९ जोध न सकिया करी जुवा^{१०} ॥
 हेकौ रासौ-बीकौ हुवैया^{११} ऐकौ साहेब, पयौ हुवा^{१२} ॥
 रासौ-साहेब धाग्या रुकै^{१३} सवलीई संसार सुवौ ॥
 मोटो जुध हिक हुवौ माळियै^{१४} हेक बली जुध सरग हुवौ ॥
 आधौ आध अपछरा आवी सुर गध्रव किया समझाव^{१५} ॥
 मानावत-हामावत मिलिया इन्द्रसमा बिच बैठा आव^{१६} ॥

भावार्थ—हाथ में तीक्ष्ण शस्त्र धारण कर वर से भरे हुए दो मद-
 नस्त चम्रिय साहेबजी और रायसिंह इन्द्रसमा में एकत्र हुए और
 दूसरी वार स्वर्ग में लड़ पड़े । इधर (जगत में) पृथ्वी के लिए और
 उधर स्वर्ग में देवताओं के समावेश न कर सकने पर अप्सराओं के
 लिए क्षाब्ध राज रायसिंह ने दूसरा युद्ध किया । इन तीखे-योद्धाओं को

१ पाठा०—खदग दाय लै खत्री वर सैं । २ पाठा०—इन्द्रसमा में आख-
 दिपा । ३ पाठा०—भीगी वार सरग पर वे वे । दूजौ वार, सरग में दोये ।
 ४ पाठा०—हय कज अलाओधी कज अपछर । वहै दराक हय ओय कइ अप-
 छर । ५ पाठा०—सुर नर रहिया करी समास । ६ पाठा०—फाछ कुँवर नै
 रासंग राथै । ७ पाठा०—दूजौ कियो कलह कविलास । ८ पाठा०—रणमल
 रणमूझार भगदिया । ९ पाठा०—जोध करे सकिया न जुवा । १० पाठा०—
 हेकौ रासौ बीकौ वेहुवा । दालो देदी हुवा एकठा । ११ पाठा०—दासौ रायधण
 हेक हुवा । १२ पाठा०—रायधण रान बाजिया रुकै । रासौ साहेब धाग्या
 रुकै । १३ पाठा०—मोटो जुध हुवौ माळियै । १४ पाठा०—मानावत भूने
 दाया भोव इन्द्रसमा में बैठा आव ।

रोकने का, देवताओं ने प्रयत्न किया परंतु वे इनको अलग नहीं कर सके । फलतः एक ओर रायसिंह, और बीकाजी, हुए और दूसरी ओर साहेबजी और पद्माजी । रायसिंह और साहेबजी तलवार से लड़े जिससे संसार शोभायमान हुआ । इनका एक युद्ध मालिमा में हुआ और दूसरा स्वर्ग में । आखिर देवताओं और गन्धर्वों ने दोनों में आधी, आधी अप्सरामें बाँट कर समाधान किया । फलतः मानसिंह का पुत्र (रायसिंह) और हमीर का पुत्र (साहेबजी सब बैर भूलकर, प्रेम, पूर्वक एक दूसरे से) मिले और हृदयसभा में आकर बैठे ।

(४) जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है, इस ग्रंथ की रचना सं० १६२० में हुई थी । इस वक्त ईसरदास पच्चीस वर्ष के थे । अतः एक नौजवान, कवि की इस ओर रसात्मक रचना में श्रेष्ठ गुण की प्रधानता होना स्वाभाविक है । परन्तु 'हरिरस' आदि इनकी रचनाएँ शान्तरस की हैं और दलती उन्न में लिखी गई हैं । एक वृद्ध कवि की रचना में भाव की गम्भीरता तो रहती है, पर श्रेष्ठ उतना नहीं रहता । ऐसी दशा में ईसरदास को वीररस की कविता की तुलना उनको शान्तरस की, और वह भी वृद्धावस्था की, कविता से करना और फिर यह निष्कर्ष निकालना कि ये दो भिन्न कवियों की रचनाएँ हैं, हमारे ज्ञेयता से युक्ति विकट हो नहीं, उपहास्य भी है ।

सारांश-कि 'हाजों शालों रा कुंडलिया' को ईसरदास-रचित न होने की जो बात उठाई गई है- वह तथ्यहीन एवं कोरी कल्पना है और उसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है । वस्तुतः यह ग्रंथ ईसरदास द्वारा लिखा हुआ है, उनके काका आशानंद का रचा हुआ नहीं ।

हाजों शालों रा कुंडलिया कोई क्रमबद्ध, कथायुक्त, ग्रंथ नहीं है । ईर्दो-कवि भूषण, कृत 'शिवा दावनी' के उग का यह एक संकलन-ग्रंथ है जिसमें वीर असाजी की प्रशंसा में लिखे हुए ईसरदास रचित छन्द पद्य समहित हैं । लेकिन 'शिवा दावनी' में और इसमें योश-सा अंतर है ।

‘शिवा घावशी’ एक वर्णनात्मक ग्रंथ है, और यह भावात्मक । इसके प्रायः सभी छंदों के पद्यों दो चरणों में कोई मौलिक भाव अथवा सिद्धांत वाक्य कहा गया है, जिसे बाद के चरणों में जसाजी अथवा उनके घोर साथियों आदि पर घटा कर विकसित किया गया है । यथा—

हिरण्यौ ज्यौं सौं गयी भाजण सणौ सभाव ।
 सूर्यो छोटी सौं तली दै चण थट्यो घाव ॥
 घाव चण थट्यो अत पिसण दळ घालणौ ।
 पौं व सै पापरयो हेकलौ पालणौ ॥ ।
 राण जसवंत सो राखिया धिरणिया ।
 हाऊ बागो तठै कूदि गा हिरणिया ॥

अधिकांश छंद हसी तरह के हैं । परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो केवल वर्णनात्मक हैं । जैसे—

ऊठि अचूँडा दोलणा नारि पर्यपै नाह ।
 घोर्पा पाखर धमधमी सीधू राग हुवाह ॥
 हुवौ अति सीधवौ राग दागी हक्यो ।
 याट आया पिसण घाट लागै थक्यो ॥
 अल्लादौं ओति खग अरि बड़ा खोलणा ।
 ऊठि हर धवल सुत अचूँका खोलणा ॥

इस ग्रंथ का यह नाम ‘हालौं शालौं रा कुँडळिया’ स्वयं ईसरदास का रखा हुआ है या बाद में किसी दूसरे व्यक्ति ने हालौं-शालौं संबंधी उनके रचे फुटकर पद्यों को एकत्र कर यह नाम दे दिया है, इसका पता नहीं लगता । दोनों ही संभावनाएँ हैं । परन्तु इनमें से किसी एक के पद्य अथवा विषय में कुछ कहने के लिए यथेष्ट सामग्री उपलब्ध नहीं है । केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह नाम है काफी प्राचीन । कम से कम ३०८ वर्ष का पुराना तो है ही । क्योंकि इस ग्रंथ की प्राचीनतम प्रति (सं० १६९८) में यह नाम मिलता है ।

०. कुछ लोग 'हाजो भाजो रा कुँबलिपा' को सूर सतसई भी कहते हैं। परंतु यह नाम अभी अभी प्रचलित हुआ है। प्राचीन लिखित प्रतियों में यह कहीं दिखाई नहीं देता। यह नाम आमक भी है। क्योंकि 'सतसई' नाम से इसमें सात सौ पद्यों का होना सूचित होता है जो इसमें नहीं है।

यह ग्रंथ मूल में कितने पद्यों का था इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। इसको प्राचीनतम प्रति जो हमारे देखने में आई है वह सं० १६९८ की लिखी हुई है। इसमें कुछ ५० पद्य हैं। इसके बाद की प्रतियों में से कुछ में ५० और कुछ में ५० से कम पद्य मिलते हैं। सिर्फ एक प्रति ऐसी देखने में आई है जिसमें ५० से अधिक पद्य हैं। यह उदयपुर के सरस्वती भंडार की प्रति है। इसमें ५३ पद्य हैं। अतः तीन पद्य अधिक हैं। परंतु इन तीन सिवाय पद्यों का विषय इस ग्रंथ के विषय के साथ मेल नहीं खाता। यह ग्रंथ वीररस का है; लेकिन इन पद्यों में एक पद्य शृंगार रस का और दो नीति विषयक हैं। वे पद्य ये हैं—

सजन गुणां समंद होतिरतिरथछो तेण ।
 अवगुण बिट न संपजै रहूँ विलंबे जेण ॥
 विलंबी रहूँ हूँ बिट अवगुण जिहो ।
 निज गुणां तुहाळा पार छाधै नहीं ॥
 बण बिट कय को भौह तजवे घणों ।
 समंद सौ पार जाधौ नहीं साजणों ॥
 हूँ गरिया रा बाहळा ओछों तणों सनेह ।
 बहता बहै उतावळा छिटक बिखलै छेह ॥
 ओह दासै छिटक घणों कीधों गमै ।
 पौध दिन प्रीत कर सर्वाँ रुठाँ ममै ॥

१. (३) ... कठि-अदंगा बोलणा, कामणि आखै कंत ॥ १. १. १. १.

औ इहाँ तो ऊपरी, हूँ कळ कळ हुवंत ॥ १. १. १. १.

१. (२) ... मूछों वायें फुरुकिया, रसण सधैकै दंत ॥ १. १. १. १.

१. १. १. १. सूतौ सैजा धौ करै, हूँ बलिहारी कंत ॥ १. १. १. १.

उस वक्त तक अरबी-फारसी के काफ़ी शब्द हिंगल में घुल-मिल गये थे और हिंगल के कवि स्वच्छंदता पूर्वक उनका प्रयोग करते थे। अतः इस ग्रंथ में भी अरबी-फारसी के शब्द यथेष्ट मात्रा में पाये जाते हैं। परंतु इन शब्दों का प्रयोग ईसरदास ने तत्समरूप में नहीं किया है; उन्हें हिंगल की प्रकृति के अनुकूल परिवर्तित कर 'काम में' लिया है। जैसे—जहर (ज़हर), बगतर (बग़तर), 'सुरति' (सूरत), फ़ौज (फ़ौज), निज़र (नज़र) इत्यादि।

इस ग्रंथ में केवल एक प्रकार का छंद, कुंडलिया, व्यवहृत हुआ है। हिंदी में एक ही तरह का कुंडलिया प्रसिद्ध है। परंतु हिंगल में इसके चार भेद माने गये हैं—झड़वलट, राजवट, शुद्ध और दोहाळा। ईसरदास ने अपने इस ग्रंथ में झड़वलट कुंडलिया का प्रयोग किया है।

इस कुंडलिया में प्रथम तो दोहा और फिर बीस-बीस मात्राओं के चार पद होते हैं तथा चतुर्थ पद को पाँचवें पद में उलट दिया जाता है। जैसे—

घोड़ों हींसन मल्लिया, पिय नोंदही निवारि ।

नैरी आया पायणी, दळ थँम तूख दुवारि ॥

दळ थँम तूख दुवारि | मुँसारी घवळ तणा ।

घणों विरदों लहण आविया अरि घणा ॥

घणा नींदाळवीं नींद सारी घणी ।

तूंगा नहछै मली हींस घोड़ी तणी ॥

ईसरदास को अलंकारों का इष्ट न था। इनके सभी ग्रंथों में अलं-

कारों का प्रयोग प्रायः कम देखते में जाता है। इस ग्रंथ में भी अलंकार विशेष नहीं हैं।

हिंगल काव्य का एक प्रमुख अलंकार 'वैण सगाई' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे हिंदी के शब्दानुशास का एक सेद कह सकते हैं। चतुर्मास की तरह इसके भी कई भेद-उपभेद हैं। वैण सगाई का एक साधारण नियम यह है कि एक छंद के एक चरण के प्रथम शब्द का आरंभ जिस वर्ण से हुआ हो उसके अन्तिम शब्द का आरंभ भी उसी वर्ण से होना चाहिए। ईसरदास ने इस नियम का, वैण सगाई का, अच्छा उपयोग किया है और इसकी पड़ी सुन्दर छटा इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर देख पड़ती है। यथा—

(अ) पितंग सहारिण पौढ़ियौ, काली भलां कृपाय ।

सुख जोषण साजै जसौ, मणिमय फौज महहाय ॥

(प्र) चदि पोरिस वर सोह चदि, चदि रिण तोरणि चाति ।

कुँवारी वह कहतळा कुँस भार भुज झालि ॥

इनके अर्धालंकारों के विषय में कोई विशेष बात कहने की नहीं है। रूपक, व्याजस्तुति, स्वभावोक्ति इत्यादि दो-चार अलंकारों के उदाहरण इस ग्रंथ में मिलते हैं, पर इनको जानने के लिए इन्हें चेष्टा करनी पड़ी हो देखा सूचित नहीं होता :

(१) जसवत-गुरख न ठहूही, ताला-अजइ तयोह ।

हाकियौ इला हुवै, पंछी अवर पुयोह ॥

—रूपक

(२) हेक पराया जब चरौ, हालौ ऊगा सूर ।

दादाला भूँछण भयौ, भागौ भाखर वूर ॥

—व्याजस्तुति

- (३) प्रीतिनि दीये दुखवड़ी, समझी चपै सीस ।
पंख क्षपेटां दिख सुवै, हूँ बलिहारि यईस ॥

—स्वभावोक्तिः

ईसरदास जन्मसिद्ध कवि थे । यह ग्रंथ उनकी अद्भुत कवित्वशक्त का परिचायक है । इसमें निम्नलिखित काव्योचित विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं ।

विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह एक अत्यन्त अनूठी रचना है । जहाँ तक भाव की मौखिकता का प्रश्न है दिग्विजय का दूसरा कोई ग्रंथ इसकी तुलना में नहीं उठरता । यह अप्रतिम है । इसमें ५० पद्य हैं । इनमें एक भी पद्य ऐसा नहीं है जिसका भाव ईसरदास ने अपने किसी पूर्ववर्ती अथवा समकालीन कवि की रचना से लिया हो । सभी भाव नये हैं और बड़ी मनोहरता से व्यक्त किये गये हैं ।

इन पद्यों में से अधिकांश को ईसरदास ने खो के मुँह से कढ़वाया है और असाजी की राणी अपने पति, अपनी सुखी इत्यादि के सामने अपने हृदयोद्गार प्रकट कर रही है । इससे वर्णन में बड़ी स्वाभाविकता एवं कोमलता आ गई है और सारी की सारी रचना भाव-सौन्दर्य से जगमगा उठी है :—

(क) सैज बमोड़ा किम सदा, किम सहिया गज दंत ।

कठिण पयोहर लागतौ, कसमसतौ तू कंत ॥

(ख) सुखी अमीणा कंध रौ, औ हूक बड़ौ समाव ।

गळियारौ ढोलौ फिरै, ढोला वागौ राव ॥

ईसरदास भाषा और भाव के सामन्जस्य को खूब समझते थे और विषय के अनुरूप शब्द-व्ययनमें प्रवीण थे । इनका एक-एक पद्य एक-एक कोशोप्राप्त है । जो बर्णन विषय को साकार रूप में हमारी आँखों के सामने आ जाता करता है । शाला रायसिंह असाजी से खड़ने के, बिष्ट्र भोळ की ओर अप्रसर हो रहे हैं । असाजी की राणी उनको चेतावनी :

दे रही है इसका वर्णन निम्नलिखित पद्य में देखिये । (पढ़ते समय) ऐसा मान होता है मानो आगे बढ़ते हुए रायसिंह और चैतावती देवी हुई राणी दोनों हमारे सामने हैं, राणी मना कर रही है और गर्वोन्मत्त रायसिंह आगे बढ़ते ही चले जा रहे हैं—

धीरा धीरा ठाकुरों, गुम्मार कियों मजाह ।

महुँगा देसो भूँ पड़ा, जो धरि होसो नाह ॥

नाह महुँगा दियण भूँ पड़ा निमै नर ।

जावसौ कदतळों केमि जरसौ जहर ॥

रुक हथ पेखिसौ हाथ असराज रा ।

ठिक्ता पाँव धीरा दियौ ठाकुरों ॥

इसी तरह का एक और शब्द-चरित्र देखिये । रायसिंह की सेना झोळ जा पहुँची है । योद्धा शोरगुल कर रहे हैं । सिंघुराग गायोजा रहा है । परन्तु जसाजी निश्चित पड़े सो रहे हैं । इस पर उनकी राणी उनकी जग जाने के लिए कह रही है—

ऊठि अढंगा बोलणा, कामणि आखै कंत ।

औ हल्ला तो ऊपरों, हूँकळ कळळ हुवत ॥

हूँकळे सिधवौ धीर कळहळ-हुवै ।

वरण कजि अपछरों सुरिमा वह-हुवै ॥

त्रिजह-हथ मयद शुभ गयंद घड तोलणा ।

ऊठि हर धवळ सुत अढगा बोलणा ॥

पूरी तस्वीर है, और तस्वीर भी बोलती हुई । 'हूँकळे' शब्द में सिंघुराग की और 'कळहळ' में वीरों की चीख-चिल्लाहट की ध्वनि साफ सुनाई पड़ रही है ।

एक अच्छी कविता का गुण है, सजैस्त्रिधर्मस । अर्थात् किसी बात को सकेत द्वारा व्यक्त करना । जिस कविता में यह गुण जितना अधिक था, जायगी वह कविता उतनी ही अधिक उत्तम-सानी जायगी ।

ईसरदास की कविता में यह गुण अथेष्ट मात्रा में मिलता है। उदाहरण—

सुदृष्टा रुधि सुकोळिया, ढोला हुआ, सनाह ।

रावतियाँ मुख झोंखणों, सढोक मिलियौ नाह ॥

‘मेरे पति के साथ तुम्हारा युद्ध हुआ है और तुम परास्त हुए हो’, इस बात को सीधी तरह न कह कर कवि ने शत्रु, योद्धाओं के घोड़ों को रक्तक्षिप्त, उनके कवचों को ढोला और उनके चेहरों को उदास बतलाकर उनकी हार होना सूचित किया है ।

यह ग्रंथ लोकोप्रिय भी कम नहीं है । विशेषकर चारण लोगों पर सका ब्रह्मत्त गहरा प्रभाव देखने में आता है । चारणों में शायद ही कोई ऐसा अभाग्य चारण मिलेगा जिसे इसकी दो चार उक्तियाँ कंठस्थ न हों । अनेक चारण कवियों ने इसके भावों को ग्रहण किया है । और तो और, बाँकीदास तथा सुरजमल की रचनाओं में भी, जो अपनी मौलिक उक्तियों के लिए प्रसिद्ध है, इसका प्रभाव स्पष्ट देख पड़ता है । दो-चार उदाहरण लीजिए—

सादूळौ आया समौ, वियौ न कोय निणंत ।

हाके विदाणी किम सहै, घण गाजियै मरंत ॥

—ईसरदास—

अवर री अम्राज सु, केहर खोज करंत ।

हाके घरा ऊपर हुई, केम सहै बलवत ॥

—बाँकीदास—

केहरि मरूँ कळाहयौ, रुहरिज रत्तदिमोहि ।

हेकिया हाथल गेहणै, दंत दुहत्या ज्योहि ॥

—ईसरदास—

केहर कुंम विदारियो, तोह दुहत्या दंत ।

रुहरि कळाई रसकी, मदतर तै महकंत ॥

—बाँकीदास—

-मालहंतौ घरि आंगणै, सखी सहेलो प्रामि ।
जो जानूँ पिय मरहगौ, जै मरहै सप्रामि ॥

—ईसरदास

घर आंगण साहै घणा, प्रासै पदियौ ताव ।
जुध आंगण सोहै जिकै, बालम ! वास वसाव ॥

—बौकीदास

औक्षण दोरै दुलबदो, लमळी चपै सीस ।
पंख रूपेटौं पिठ सुवै, हूँ बलिहार थईस ॥

—ईसरदास

कंकायो चंपै घरण गीधानी सिर गाह ।
-ओ विण सुतौ सेनरी, रीत न छुंढै नाह ॥

—सुरजमल

सेल घमोड़ा किम सहा, किम सहिया गनवंत ।
कठिन पयोहर लागतौ, कसमसतौ तूँ कंत ॥

—ईसरदास

-करदा कुच नूँ भाखतौ, पड़वा हंदी चोक ।
भव फुलौं निम आंग मै, सेलौं री घमरोक ॥

—सुरजमल

-बैनाणी दीली घडै, मो कंथ तणौ सनाह ।
विकसै, पोयण फूल निम, पर दळ दीठां नाह ॥

—ईसरदास

आळस जागै ऐस मै, बप दीलै विकसंत ।
सीधु सुणियौ सौ गुणौ, कवच न मावै कंत ॥

—सुरजमल

घोड़ौं होसन मलिया, पिय नींदकी निवारि ।
-वैरी आया पावणा, दळ थँम वृष दुवारि ॥

—ईसरदास

घण्य आखै जागौ घणी, हूँकळ कळळ हजार ।
विण नूतारा पाहुणा, मिळण बुझावै बार ॥

—सुरजमल

सखी भसीणा कंत रौ, अंग ठीलौ आचंत ।
कदो ठहकै बगतारौ, नदी नदी नाचंत ॥

—ईसरदास

सुण्य हेब्री ठोलै सहज, लेणौ पंदवै कोच ।
कंत सजतां सौ गुणौ, कदो बजतां कोच ॥

—सुरजमल

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, ईसरदास ने सब मित्राकर १२ ग्रंथ रचे हैं । परन्तु इनमें यही एक ऐसा ग्रंथ है जिसकी गणना काम्य में की जा सकती है । यदि यह ग्रंथ न रचा गया होता तो ईसरदास को कवि कहने में भी संकोच होता ।

संपादक

हालाँ झालाँ रा कुंडालिया

१

हालाँ झालाँ होवसी सीहॉ लत्थौवत्थ ।

धर पैलाँ अपणावसी कै अपणी परहत्थ ॥ २

करै धर पारकी आपणी जिकै नर ।

केवियाँ सीस खग-पाण करणा कचर ॥

सत्रहराँ नारि नहँ नीद भरि सोवसी ।

हलचलाँ सही हालाँ घरै होवसी ॥ १ ॥

शब्दार्थ—हालाँ=हालावंशी क्षत्रिय; जसाजी । झालाँ=
झालावंशी क्षत्रिय; रायसिंह । होवसी=होगी । लत्थौवत्थ=
गुल्यम-गुल्य; भिड़न्त । पैलाँ=दूसरों की; पराई । अपणावसी=
अपनाएंगे; अधिकार में करेंगे । कै (काय)=क्या । पारकी=

१. RD हाला क्षाळा । C लयोघय । GRD अपणावत्था ।
C आपाणो । RA आपणदो । S काय आपणी । D नहँ अपणो । C हय ।
C आपकी । RDS जिके । D केवियाँ । SA दोषणां । C पाणि ।
RS सत्राँहर, A सत्रां चो । ADRS नार । ADR भर । RD हाळा ।
C घरे ।

पराई; शत्रु की। आपणी = अपनी। जिकै = जो। केवियाँ = शत्रुओं की। खग = खड्ग। पाण = बल; हाथ। करण = करने वाला। कचर = चूर-चूर; विदीर्ण। सत्रहराँ = शत्रुओं की। सोवसी = सो सकेगी। हलचलाँ = उपद्रव, लड़ाई। सही = निश्चय ही।

भावार्थ—हालों (जसाजी) और भालों (रायसिंह) की सिंह चत् गुत्थम गुत्था होगी। वे पराई धरती को अपनाएँगे। अपनी पराये हाथ में क्या जाने देंगे? जो मनुष्य पराई धरती को अपने अधिकार में करता है, जो शत्रुओं के सरों को खड्ग-बल से विदीर्ण करनेवाला है, उसके शत्रुओं की नारियाँ भर नौद नहीं सो सकेंगी। निश्चय ही हालों के घर हलचल होगी।

२

धीरा धीरा ठाकुराँ गुम्सर कियो म जाह ।

महुँगा देसी भूँपड़ा जै घरि होसी नाह ॥

नाह महुँगा दियण भूँपड़ा त्रिमै नर ।

जावसौ कड़तळा केमि जरसौ जहर ॥

रुक-हथ पेलिसौ हाथ जसराज रा ।

ठिवंताँ पाव धीरा दियौ ठाकुराँ ॥ २ ॥

शब्दार्थ—गुम्सर = गर्व। म = मत। जै = जो। दियण = देना; देनेवाला। त्रिमै = निर्भय। कड़तळ = माला, राजपूतों की

२. C ठाकुरे। C मूलर; S घूमर; D गूमर। A मोहेंगा। RD झोफड़ा, S झोपड़ा। CS जो। AS घर। CS जावस्यौ। RS केम। CRD जरस्यौ। ARD पेलस्यौ, S ज वस्यौ। CDS ठवंताँ, R रमताँ। AS पाँव। RD दिये, C दीयो।

एक शाखा का नाम । जावसौ = जाओगे । केमि = कैसे । जरसौ = पचाओगे । रूक = तलवार । रूक हथ (१) = खड्गधारी । पेखिसौ = देखोगे । रा = का । ठिवताँ = चलते हुए; रखते हुए । पाव = पाँव, पैर ।

भावार्थ—(हाला जसाजी की छो भाला रायसिंह को संवोधित कर कहते हैं) हे ठाकुर ! धीरे-धीरे चलो । गवने करते हुए मत जाओ । यदि मेरे निर्भय पति घर पर हुए तो वे अपने झोंपड़ों को बहुत महंगे मोल पर देंगे । हे भाला ! जाकर कैसे तुम जहर को पचाओगे । तुम खड्गधारी जसराज के हाथों को देखोगे । हे ठाकुर ! चलते हुए अपने पाँवों को धीरे-धीरे रखो । अर्थात् पाँवों को आहट मत होने दो ।

३

घोड़ों हींस न भल्लिया पिय नींदड़ी निवारि ।

वैरी आया पावणों दळ-थँभ तूझ दुवारि ॥

दळ-थँभ तुझ दुवारि भुँझारि धवळ तणा ।

घणों विरदों लहण आविया अरि घणा ॥

घणा नींदाळवों नोंद वारों घणी ।

तूंग नहँ छै भली हास घोड़ा तणी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—हींस = हिनहिनाहट । भल्लिया = भली, शुभ ।

३—RDA घोड़ा । C हीसन । R हीसण । A' हीसन । S हीस नभमजियाँ । C भलीयाँ । C पाव, RDS पाव । AS निंदड़ी । ARSD निवार । AR काय वैरी काय पावणों, D पामया । ARSD दुवारव RD भुँझार । C धमळै, RD धवळइ । S यहण । RD अर । ASD नींदाळवों । SRD वारों । ARS नहचै, D न हुये ।

नींदड़ी = निद्रा । निवारि = छोड़ । पावणा = पाहुने, अतिथि ।
दलर्थभ = सेना के स्तम्भ-स्वरूप; भारी; विकट । झुंकारि = योद्धा;
लड़ाके । धवळ = हरधौळ; जसाजी के पिता का नाम । तणा
(तण) = तनय, बेटा । घणा = बहुत । विरदो = यश; कीर्ति ।
लहण = लेने को, लेनेवाले । विरदो लहण = यशस्वी । नींदा-
ळवाँ = निद्रालु । वारो = छोड़ो । घणी = बहुत । तूंग (सं० उत्तग)
= ऊँची, भारी । छै = है । भली = अच्छी; शुभ । तणी = की ।

भावाथ—(जसाजी की स्त्री कहती है) हे पति ! द्वार पर
घोड़ों की जो हिनहिनाहट हो रही है वह शुभ नहीं है । तुम नींद
को छोड़ दो । विकट वैरो पाहुने बनकर तुम्हारे द्वार पर आये
हैं । हे हरधौळ के पुत्र ! बड़े यशस्वी योद्धा शत्रु बहु सख्या में
तुम्हारे दरवाजे पर आये हैं । हे बहुत निद्रालु ! बहुत नींद को
त्यागो । घोड़ों की ऊँची हिनहिनाहट अच्छी नहीं है ।

टि०—‘घोड़ा हींसण भल्लिया’ । राजस्थानी भाषा में ‘भल्लना’
शब्द ‘फैल जाना’ के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । जैसे ‘खेत
भल्लि गियो है,’ ‘बाड़ भल्लि गी है’ इत्यादि । यदि उक्त ‘भल्लिया’
शब्द का यहाँ यह अर्थ लिया जाय तो R प्रति के हींसण’ पाठ
को ग्रहण करना पड़ेगा और तब ‘घोड़ा हींसण भल्लिया’ का
अर्थ होगा—घोड़ों की हींस फैल गई है अर्थात् युद्धार्थ आये हुए
वीरो के घोड़े तुम्हारे द्वार पर हींसने लग गये हैं । अब नींद
निकालने का अवसर नहीं है । उठो ।

टि०—अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में ‘नहचै’ पाठ है ।
‘यदि इस पाठ को ग्रहण किया जाय तो ‘तूंग नहचै’ का अर्थ
होगा—निश्चय ही सैन्य-समूह है । नहचै = निश्चय ही । तूंग =
(सैन्य) समूह । इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग डिंगल ग्रंथों
में देखने में आता है । जैसे—

(१) “खग बाँध चढ़ै अस तूंग खड़ा ।”

(२) “तिण बार मिलै नह टळै तूंग ।”

(३) “लखि फौज तूंग लड़ंग ।”

टि०—यदि ‘तूंग’ को संस्कृत ‘तूंगी’ (रात्रि) का रूपान्तर माना जाय तो ‘तूंग नह छै’ का ‘अब रात्रि नहीं है’ अर्थ भी किया जा सकता है ।

४

ऊठि, अचूँका बोलणा नारि पयपै नाह ।

घोड़ों पाखर धमधमी सींधू राग हुवाह ॥

हुवौ अति सोंधवौ राग वागी हकों ।

थाट आया पिसण घाट लागै थकों ॥

अखाड़ों जीति खग अरि घड़ा खोलणा ।

ऊठि हरधवल सुत अचूँका बोलणा ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—अचूँका = अचितित, निशंक; बेफिक्र । बोलणा = बोलनेवाले । पयपै = कहती है । नाह = नाथ; पति । पाखर = मूल । धमधमी = धमधमा उठी है; बहुत तप गई है । सींधू राग = बीर रस वर्द्धक एक राग विशेष । वागी = वजी; हुई । हकों = हाँक । थाट = समूह । पिसण = शत्रु । घाट = घात; दाँव । घाट लागै थकों = घात लगाये हुए । खग = खड्ग । घड़ा = सेना । खोलणा = तहस नहस करनेवाला; बिखेरनेवाला ।

भावार्थ—जसाजी की खो अपने पति से कहती है कि हे

३. S ऊठ । C अचूँका । ARD अचूँका । SRD नारि । A पयपै । ARD हुवाह । RD हुवै । S अति । SRD पिसण । A अगितो । SRD जीति । AD हरिधवल ।

निशंक बोलनेवाले । उठ । घोड़ों की पाखरें बहुत गरमा गई हैं और सिंघू राग हो रहे हैं । हॉक बज उठी है । घात लगाया हुआ शत्रु समूह आया है । हे अखाड़ों को जीतनेवाले, शत्रु-सैन्य को तहस-नहस करनेवाले, निशंक बोलनेवाले, हरधोळ-सुत, उठ ।

५

ऊठि अढंगा बोलणा कामणि आखै कंत ।
 अै हल्ला तो ऊपराँ हूँकळ कळळ, हुवंत ॥
 हूँकळै सीधवौ वीर कळहळ हुवै ।
 वरण कजि अपछराँ सूरिमाँ वह बुवै ॥
 त्रिजड-हथ मयंद जुध गयंद-घड़ तोलणा ।
 ऊठि हरधवळ सुत अढंगा बोलणा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—अढंगा = विकट । बोलणा = बोलनेवाला । कामणि = स्त्री । आखै = कहती है । अै = यह । ऊपराँ = ऊपर । हल्ला = आक्रमण, दौड़-धूप, आवाज । हूँकळ = हुँकार । कळळ = शोरगुल । हूँकळ कळळ = हाथी-घोड़ों, योद्धाओं आदि की मिली-जुली चीख-चिल्लाहट । हुवंत = हो रही है । हूँकळै = गूँज रहा है; हो रहा है । कळहळ = वीर शब्द । कजि = लिए । अपछराँ = अप्सराओं को । वह = बहु; बहुत । बुवै = फिर रहे हैं, घूम रहे हैं । त्रिजड = तलवार । हथ = हाथ । त्रिजड-हथ = खड्गधारी ।

५ SRD कामण । S ए । ARD ये । D उपरा । C हो परि हुवै । CR हूँकळै । A राग (वीर) । AD कळहळ । C कळिधळ । S कज । S सूरमा । SR बहु । AC वहै (बुवै) । ASD मईयं । ASD गहद । RD घड़ । AGRD रणधवळ ।

मयंद = सिंह । गयंद-घड़ = गज-सेना । तोलणा = तौलने वाले;
मूल्यांकन करनेवाले, मारनेवाले ।

भावार्थ—जसाजी की स्त्री कहती है कि हे विकट
बोलनेवाले ! उठ । यह आक्रमण तेरे ऊपर है । शोर-गुल हो
रहा है । सिंधू राग गूँज रहा है । वीरों का कोलाहल हो रहा है ।
अप्सराओं का वरण करने के लिये बहुत से योद्धा फिर रहे हैं ।
युद्ध में गज-सेना को मारनेवाले, खड्गधारी, मृगेन्द्र, हरधोळ-
सुत, विकट बोलनेवाले ! उठ ।

६

कालौ मंजीठी कियौ नइगै नींदालुद्ध ।
अंवर लागौ ऊठियौ विढवा वंस विसुद्ध ॥
वंस विसुद्ध वरीयाम साम्हौ विढण ।
घणा दिसि दोइणों म्हालियौ विरद घण ॥
थूरहथ धवळरौ थाट मैं वट थियौ ।
काल-चालौ चखौ चोळयोळौ कियौ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—कालौ = काल; यमराज, मतवाला । मंजीठी कियौ =
मंजीठ के रंग का अर्थात् लाल किये हुए । नींदालुद्ध = निद्रालु;
नींद का लोभी, नींद लिये हुए । विढवा = लड़ने को । वरीयाम =
श्रेष्ठ, जोरावर । साम्हौ = सामने; समक्ष । घणा = बहुत । दिस =

६. SR मंजाठी, D मंजांठे । C किये । CRSD नयणे । ACR
नींदालुध । D नींदालूध । CR चिढसी । ACR विसुध । SRD सामो ।
SR दिस । C दुरजणों, SRD दोयणों । S थूल । RD धमल । S मैं ।
S मट । SRD थिया । SRD कालौ । A चोळ वरये । C चोळ
लोचन कीची ।

तरफ; दिशा। दोइरणौ=शत्रु। म्हालियौ=आनंद-पूर्वक घूमा। विरद=यश; ख्याति। थूरहथ=छोटे हाथवाला। धवळरौ=हरधोळ का वेटा। थाट=(सैन्य) समूह; सेना। वट=वट-वृक्ष के समान फैला हुआ, बड़ा। धियौ=हुआ। काळ-चाळौ=युद्ध में काल स्वरूप। चोळ बोळौ=चोल के समान रंगा हुआ, रक्तवर्ण।

भावार्थ—वह मतवाला, निद्रालु, विशुद्ध वंशवाला, 'अपनी आँखों को लाल किये हुए उठा और आकाश से जा लगा। अनेक दुश्मनों की ओर आनंद पूर्वक घूमकर उसने भारी यश सचिव किया। छोटे हाथवाला, हरधोळ का पुत्र, जसाजी, सैन्य-समूह में वट-वृक्ष के समान विस्तीर्ण हो गया। युद्ध में काल स्वरूप उस जसाजी की आँखें चोल के समान लाल रंग की हो गई।

७

माल्हंतौ घरि आंगणै सखी सहेलौ ग्रामि ।

जो जाणूँ पिय माल्हणौ जै मल्लै संग्रामि ॥

ग्रामि संग्रामि भूँझार माल्लै गहड़ ।

अरि घड़ा खेसवै आप न खिसै अनड़ ॥

घाड़ भाँजै घड़ा खाग त्राछै घणौ ।

मेर मांझी जसौ हेक रिण माल्हणौ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—माल्हंतौ=आनंद की मौज में धीरे-धीरे मस्त चाल से चलना; मल्लहाना। सहेलौ=आसान। माल्हणौ=आनंद से

७. S सहेलौ कामि । A मालता घर आणै सखी सुहेलौ गाम ।

C पिय । A माल्हणौ । S बरियाम (भूँझार) । AD अरि दळ । AR

CS घड़ा बर भूँझतौ घणा भाँजै घणौ । CR जिसौ । RAD

धूमनेवाला; आनंदो । मालहै=मल्हावै । गहड़=उद्धत । खैसवे = गिराता है । घड़ा=सेना । खिसै=गिरता है । अनड़=अनम्र । घाड़= घाव । भाँजै=भंजन करता है । घड़ा=सेना । खाग=तलवार । श्रैछै=काटता है । घणौ=बहुत । मेर=मेरु पर्वत । मांगी= मुखिया; जोरावर । हेक=एक ।

भावार्थ—हे सखी ' अपने गाँव और घर के आँगन में मल्हाना सहज है । मैं तो अपने पति को मल्हानेवाला तब समझूँ जब वह संप्राम में मल्हावे । उद्धत योद्धा ही संप्रामरूपी गाँव में मल्हात है । वह अनम्र वीर शत्रु सेना को गिराता है और खुद नहीं गिरता है । वह घाव देकर सेना का भंजन करता है और खड्ग से बहुत काट करता है । मेरु पर्वत के समान मुखिया जसाजी हीरण में मल्हाने वाला है ।

८

एकौ लाख आंगमें सीह कहीजै सोय ।

सूराँ जेथी रोड़ियै कळहळ तेथी होय ॥

कळळ हूँकळ अवासि खेति सूरा करै ।

धीरपै सुहड़ रिण चलण धीरा धरै ॥

आगि ब्रजागि जसवंत अकळावणौ ।

खाग बळि एकलो लाख दळ खावणौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—आंगमें=आक्रमण करता है; गालिव होता है;

न RC येकौ, D हेकौ । ACR रोड़ियै । CDR कळीयळ ।
SRD जेथ, A खेत । ARC मड़ (रिण) । AC बरनागि ।
CDR अधियावणौ । A अगयावणौ । CS खड्ग । RD बळ ।
ARS एकलौ, C येकलौ, D हेकलौ । C खेसणौ ।

सहन करता है। कहीजै=कहना चाहिए। शूरोँ=वीरोँ को।
जेथी=जहाँ; जिधर। रोड़ियै=घेर लेता है। तेथी=वहाँ; उधर।
फळहळ=कोलाहल। कळळ-हूँकळ=शोरगुल। अवसि=अवश्य।
धीरपै=धैर्य देते हैं। सुहड़=सुभट। चलण=चालें; गति।
आगि ब्रजागि=विजली की आग, वज्र की अग्नि। अकळवेणौ=
निर्द्वन्द्व; घबरा देनेवाला, अकुला देनेवाला। खाग=खझें।

भावार्थ—सिंह उसी को कहना चाहिए जो अकेला लाखों की
बराबरी करता है; वह जिधर शूरोँ को घेर लेता है उधर कोला-
हल हो जाता है। अवश्य ही रणभूमि पर योद्धा शोरगुल करने
लगते हैं। वह युद्ध में वीरोँ को धैर्य देता है और धीमी चाल से
चलता है। निर्द्वन्द्व जसवत वज्र की आग है। वह अपनी
तलवार के बल से अकेला एक लाख सेना को खानेवाला है।

६

सादूळौ आपा समौ वियौ न कोय गिणंत ।
हाक विडाणी किम सहै घण गाजियै मरंत ॥
मरै घण गाजियै जिकौ सादूळ महि ।
सत्रौ चा ढोल सिर सकै किम जसौ सहि ॥
वयण घण सौभलै रहै किम वीसमौ ।
सुपह सादूळ कुणि गिणै आपा समौ ॥ ६ ॥

व्दार्थ—सादूळौ=शार्दूल, सिंह। आपा=अपने। समौ=
समस्त, समान। वियौ=दूसरा। कोय=किसी को। हाक=हाँक;

९ CSRD सादूळौ। AS बीजो D कोह। SR कवण। D गाजियौ।
ARD जास, S जासु। S मह। CRD रा (चा)। RD सुण (सिर)।
AS सह। A वहण। RD समलै। A सकौ (सुपह)। S आपह।

हुँकार; आवाज । बिडाणी = पराई; दूसरों की । घण = बढ़ल
जिकौ = जो । महि = पृथ्वी । सत्राँ चा = शत्रुओं के । सिर = सिर
पर; ऊपर । किम = कैसे । सहि = सहन करना । वयण = आवाज ।
साँभळ = सुनकर । वीसमौ = विषम; विस्मित, विभ्रात । सुपह =
राजा । कुणि = कैसे । गिरै = गिनता है ।

भावार्थ—शार्दूल अपने सामने किसी दूसरे को कुछ नहीं
गिनता । वह दूसरों की हुँकार तो सहे ही क्या ? घन गर्जन से ही
मरता है । जो शार्दूल पृथ्वी पर बढ़लो की गड़गड़ाहट से ही मरता
है, वह (जसाजी) शत्रुओं के ढोल को अपने सर पर बजता
हुआ कैसे सह सकता है ? वह विषम वीर घन-गर्जन को सुनकर
कैसे रह सकता है ? राजा शार्दूल अपने सामने किसे गिनता है ?

टि० 'वयण घण साँभळ' रहै किम वीसमौ' का यह अर्थ भी
किया जा सकता है—'घन-गर्जन से विभ्रान्त होकर वह कैसे रह
सकता है ?

१०

सीहणि हेकौ सीह जणि छापि मंडै आलि ।
दूध विटाळण कापुरस बौहळा जणै सियाळि ॥
घणा सियाळि जे जणै जंबूक घणा ।
तोहि नहँ पूजवै पाण केहरि तणा ॥
धूणि खग ऊठियौ अमंग साम्हौ धणी ।
सीह जसवंत जिसौ हेक जणि सीहणी ॥ १० ॥

१० SD सीहण । h हेको । SD जग । SD छापि । SRD आळि ।
A विटोळण । A बौहळा । RD घणू । AR जंबूक । SRE तोय ।
A नहि A धोणि । RD धूण । A साँभे । SRD जण ।

शब्दाथ—हेकौ = एक । जणि = जन्म दे; पैदा कर । छापारि = खुला मैदान । मडै = रचता है । आळि = खेल; घेरा । विटाळण = भ्रष्ट करनेवाले; लज्जित करनेवाले । कापुरुष = कायर; नीच । पौहळा = बहुत, बहुलता से । सियाळ = शृगाल; सियार । घणा = बहुत । जबूक = गीदड़, सियार । तोहि = तो भी । पूजवै = परावरी करते हैं । पाण = बल । तणा = का । धूणि = घुमाकर । खग = तलवार । अभंग = निडर । जिसौ = जैसा । साम्हौ = सामने । धणी = पति । सीह = सिंह । हेक = एक ।

भावार्थ—हे सिंहनी ! एक सिंह को जन्म दे जो खुले मैदान में खेल खेलता है । दूध को भ्रष्ट करनेवाले कायर तो सियारी बहुत पैदा करती है । सियारियाँ बहुत हैं जो बहुत गीदड़ों को जन्म देती हैं । तो भी वे सिंह के बल को बरावरी नहीं कर पाते हैं । तलवार को घुमाकर निर्भय पति सामने खड़े हुए हैं । हे सिंहनी ! जसवत जैसे एक ही सिंह को जन्म दे ।

११

केहरि मरुँ कळाइयाँ रुहिरज रत्तड़ियाँह ।

हेकणि हाथळ गै हणै दंत दुहत्था ज्याँह ॥

दंत दुहत्था ज्याँह हाथियाँ सबळ दळ ।

आवधौ अरहरां चूर करणौ अकळ ॥

रोळसी खळदळौ चखाँ रातंवरी ।

कळायाँ मरुँ त्यों जसौ गज केहरी ॥ ११ ॥

११ SRD केहर । A मरो । AC रोहिरज । SRD हेकण । CR गज । C युहयाँ । C ज्याँह । A दोहहाय । A त्यों यपरिण । CRD आवधे । C अरियाणाँ । AR आहीण । CR करतो । SRD खळांदळ । C चखे । C कळाये ।

शब्दार्थ—मरुँ = मरता हूँ; न्योछावर हूँ । कळाइयाँ = प्रकोष्ठ;
हाथ की कलाइयो पर । रक्तडियाँह = रक्तवर्ण । हेकणि = एक ।
हाथळ = हाथ का पंजा । गै = हाथी । हणै = मारता है । दुहत्था =
दो हाथ लंबे । व्याँह = जिसके । आवधो = आयुध । अरहराँ =
शत्रु के । अकळ = पूर्ण । रोळसी = उपद्रव करेगा; खलवली मचा-
एगा । खळदळोँ = शत्रु-दल । रातंबरी = लाल । कळायाँ = कळाइयाँ ।

भावार्थ—हे सिंह ! मैं रुधिर से भरी हुई तेरी लाल रंग की
कलाइयों पर न्योछावर हूँ । तू अपने पंजे के एक ही प्रहार से
हाथी का हनन करता है जिसके दो हाथ लंबे दाँत होते हैं । तू दो
हाथ लंबे दाँतवाले हाथियों के सबल दल को, शत्रुओं के आयुधों
को, पूर्णरूप से नष्ट-भ्रष्ट करनेवाला है । रक्तवर्ण की ओखोवाला
तू शत्रु दल में उपद्रव करेगा । हे हाथी के लिए सिंह स्वरूप
जसाजी मैं तेरी कलाइयों पर न्योछावर हूँ ।

१२

केहरि केस भमंग-मणि सरणाई सुहड़ाँह ।
सती पयोहर कपण धन पड़सी हाथ सुवाँह ॥
मूवाँहिज पड़ैसी, हाथ भमंग-मणि ।
गहड़ सरणाइयाँ ताहरै गैडसणि ॥
काळ ऊमौ जसौ सकै नेड़ा करी ।
कुणि सती पयोहर मूछ लै केहरी ॥१२॥

१२—SRD केहर । CRD 'सुयंग' । S मिण । CRD पयोहर ।
CRD विप्र । A हम । C जिम । ACR सरणाइयाँ । SC गैडसण ।
C करै । A कुण जियै सतीय मूछ कुच केहरी । C हाथ गज केहरी ।

शब्दार्थ—भ्रमंग = सर्प । सरणाई = शरण, शरणागत ।
सुहड़ाई = बहादुरों के । मूर्वाँहिज = मरने पर ही । गहड़ = गाढ़ा
बलवान । ताहरै = तेरे । गैडसणि = वाराह । नेड़ा = नजदीक ।

भावार्थ—सिंह के केस, सर्प की मणि, बहादुरों के शरणागत
सती के स्तन और कपण का धन उनके मरने पर ही हाथ लगते
हैं । हे वाराह ! सर्प की मणि और वीरों के आश्रित मरने पर
ही तेरे हाथ आएंगे । जसराज रूपी काल खड़ा है । कौन उसके
नजदीक जा सकता है ? कौन सती के पयोधर और सिंह की
मूँछ को ले सकता है ?

टि० अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है । गैडसणि अर्थात् वाराह
से यहाँ कवि का सकेत ज़सासी के प्रतिद्वन्द्वी रायसिंह की
ओर है ।

१३

सरखी अमीणा कंथ रौ अंग ढीलौ आचंत ।
कड़ी ठहकै बगतराँ नड़ी नड़ी नाचंत ॥
नड़ी नाचै भिड़ै छोह लोहा भिळै ।
ऊससै सुवप मुख मूँछ भोहाँ भिळै ॥
खगाँ उनगाँ पिसण पाड़ि ऊमौ षड़ौ ।

कहूँ इण भाँति ढीलौ सरखी कंथड़ौ ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—अमीणा = हमारा । रौ = का । आचत = अचिंत्य,
अत्यंत, अत्यधिक । ठहकै = दृढ़ता है । नड़ी = नस, नाड़ी । छोह =

१३ SD कत । RS राचंत । D, अचंत । A सरखी अमीणौ कनकौ
अंग ढीलौ अनठ । RD ठहकै । D खरी खरी । SRD चढ़े ।
A बोहाँ । SD पाड़े । S भाँति ।

मुँह वाली । आमिखचरों = माँसभक्षिणी । साम्हौ = सामने; समक्ष
घणी = स्वामी; पति । आकुली = आकुल, व्यग्र; बेचैनी । किम =
कैसे; क्यों ।

भावार्थ—हे गिद्धनी ! उतावली क्यों है ? घोड़ा कस रहा
हूँ । धीरज रख । हे रक्तमुखी, माँस-भक्षिणी ! युद्ध में या तो मैं
तुम्हें शत्रु के सर पर बैठाऊँगा या अपने शरीर पर अर्थात् या तो
मैं शत्रु को मारूँगा जिससे तू उसके सर पर बैठकर उसका माँस
खा सकेगी या लड़ता हुआ खुद मारा जाऊँगा (रण से भागूँगा
नहीं) जिससे मेरा माँस भक्षण कर सकेगी । तू भूखी नहीं
रहेगी । सामने घोड़ा कसते हुए स्वामी कहते हैं कि हे गिद्धनी !
आकाश मार्ग में बेचैन क्यों फिर रही है ।

१५

थोड़ा बोलौ घण सहौ नहचै जो नेठाह ।

जो परवाड़ा आगलौ मित्र करीजै नाह ॥

नाह इसड़ा नराँ वात विगड़ै नहीं ।

घणा मझ घातियाँ भार झालै घणौ ।

बहुत अवगुण कियाँ थोड़हो बोलणौ ॥ १५॥

शब्दार्थ—बोलौ = बोलने वाला । नहचै = निश्चय ही । नेठाह
= निशानी; लक्षण । परवाड़ा = प्रवाडा, युद्ध । आगलौ = अग्रणी ।
इसड़ा = ऐसे । सोन = सोना । जिकौ = जो । पूजै = पूरी उत्तरती
है । मझ = में । घातियाँ = शत्रुओं के । झालै = ग्रहण करते हैं; उठाते
हैं । घणौ = बहुत ।

१५ SARD बोलण । A नाह सो मित्र करि धुरी होसी नहीं ।
RD कवसटो । S साच पूरै । A में (मझ) । S मज । AR बौहोत ।
S अवगण । RD औगण । A थोड़ हो ।

भावार्थ—हे पति ! यह निश्चय हो ठीक निशानी है कि जो अधिक सहन करनेवाला होता है वह कम बोला करता है । ऐसे युद्ध में अग्रणी को अपना मित्र बनाना चाहिए । हे पति ! ऐसे मनुष्यों से बात नहीं विगड़ती । सोने की कसौटी पर वे ठीक उतरते हैं । बहुत शत्रुओं के बीच में वे भारी बोझ को उठाते हैं । बहुत बोलना अवगुण है । थोड़ा बोलना चाहिए ।

१६

ल्यावै लोडि पराइयाँ नहँ दै आपणियाँह ।

सखी अमीणा कंथ री उरसाँ भूँपड़ियाँह ॥

लोडि धर वीर वर पराई ल्यावणा ।

आपणी न दै भड़ जिकै अधियामणा ॥

वरण कजि अपछरा वाट जोवै खड़ी ।

ज्याँ भड़ौ तणी झिल्लै उरस भूँपड़ी ॥१६॥

शब्दार्थ—ल्यावै=लाता है । लोडि=छीनकर । पराइयाँ=दूसरों की । आपणियाँह=अपनी । अमीणा=हमारा । कंथ=कंठ । उरसाँ=आकाश में; स्वर्ग में । जिकै=जो । ल्यावणा=लाते हैं; लानेवाले । अधियामणा=जबरदस्त; जोरावर । वरण=विवाह । कजि=लिए । अपछरा=अपसरा । झिल्लै=शोभित होती है । भड़ौ=बहादुर । जोवै=देखती है । वाट=रास्ता । ज्याँ=उन । तणी=की ।

१६—ARD लावै । SD लोडि । S नहँ RD जिनाँ दही है सखी । RD झोंपड़ीयाँह । ARD लावणाँ । S आपरी, RD जिकै । S कज । D अपचरा । AR झूलै ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरे पति की झोंपड़ी आकाश में है । वे दूसरों की धरती को छीन कर लाते हैं । और अपनी नहीं देते हैं । उनसे विवाह करने के लिए अप्सरा खड़ी प्रतीक्षा करती रहती है । ऐसे बहादुरों की झोंपड़ी आकाश में शोभित होती है ।

१७

सखी अमीणा कंत रौ औ इक वड़ौ सुभाव ।

गळियारों ढीलौ फिरै हाकों दागों राव ॥

वाजियाँ वीर-हक विहस लागै विढण ।

विलम न धारै करतोर अपछर वरण ॥

आवरत जसौ अरि घड़ा अध्रियामणौ ।

ताइ हे सखी साभाव कंता तणौ ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—अमीणा=हमारा । औ=यह । गळियारों=गलबहियाँ, गलियों में । विहस=जोश से । विढण=लड़ने । करतोर=करने में । आवरत=घेरा होता हुआ युद्ध, मडलाकार घेरने वाली सेना । घड़ा=सेना । अध्रियामणौ=ज्वरदस्त । ताइ=ऐसा ।

भावार्थ—हे सखी ! मेरे कंत का यह एक बहुत बड़ा स्वभाव है । गलबहियाँ में तो वह ढीला रहता है पर हाँक होने पर राव हो जाता है । वीर-शब्द होने पर वह बहुत जोश से लड़ने लगता है और अप्सराओं का वरण करने में देरी नहीं करता है । घेरा होता

१७ SRD कथ । R चौ । S यो । CSR यक । SC सुभाव ।
SRD गळियारों । SRD बहै । C ढोलों । A बहसि । D लागौ ।
ABD सुख नहीं करै । C आवरतस । SRD अरि । D दे । SRD कथा ।

हुए युद्ध में जसाजी शत्रु-सैन्य के लिए बहुत ज़बरदस्त है। हे सखी ! ऐसा मेरे कंठ का स्वभाव है।

१८

जसवंत गुरड़ न उड्डुही ताली त्रजड़ तणेह ।

हाकलियाँ दूला हुवै पंछी अवर पुणेह ॥

हुवै पंखराव जिम वीर हाकलियाँ ।

थरहरै कायरों उवर दीला थियाँ ॥

छोह करतालियाँ चिड़कला छड्डुही ।

अभंग जसवंत जुध गुरड़ नहँ उड्डुही ॥ ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—गुरड़ = गरड़। उड्डुही = उड़ना है। ताली = ताली। त्रजड़ = तलवार। तणेह = की। हाकलियाँ = हाँक लगाने पर। दूला = गुड्डा; शिथिल; निस्तेज; भयभीत। हुवै = होकर। अवर = अन्य। पुणेह = सुन कर। पंखराव = गरड़। उवर = उर; हृदय। थियाँ = होकर। छोह = क्रोध; क्षोभ। करतालियाँ = हाथ की तालियाँ। चिड़कला = पत्तो। अभंग = निर्भय। छड्डुही = छोड़ते हैं।

भावार्थ—तलवार-रूपी ताली से जसवंत रूपी गरड़ नहीं डटा। हाँक लगते ही दूसरे पत्ता निस्तेज होकर भंग जाते हैं। धीर-हाँक होने पर वह (जसवंत) गरड़ जैसा हो जाता है। कायरों के हृदय ढाले होकर थरथराते हैं। हाथ की तालियों के

१८. ARD गरड़, A छ उड्डुहा। D हुवे। RD पखी। R छठर, D घौर। A हाकलियाँ दीला हुवै पखी नाहि बय्येह। D कंठियाँ A उरह। A बाजियाँ खाग जसराज घेढांमगौ। उड्डि पडै छिड्डिछिडा जेम प्रवीयामगौ।

२१

साँई एहा भीचड़ा मोलि महुँगै वासि ।
ज्यो आछन्ना दूरि भौ दूरि थको भौ पासि ॥
रहै किमि पासि भौ राखियो रावतो ।
स्यामि रै कामि हणवँत जिसा सावतो ॥
खत्री गुर वासिया मोलि महुँगा खरा ।

अरि घड़ा भोजिसी भीच जसवंत रा ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—एहा = ऐसे । भीचड़ा = सुभट; बहादुर । वासि = निवास; पड़ोस । ज्यो = जिनके । आछन्ना = पास रहते हुए । किमि = कैसे । भौ = भय । दूरि थको = दूर रहते हुए । रावतो = राजपूत सरदार, शूर । स्यामि = स्वामी । हणवँत = हनूमान । सावतो = सामंत । खत्री = क्षत्रिय । गुर = बड़े; भारी । वासिया = बसाये । भीच = सुभट । भोजिसी = भजन करेंगे; नष्ट करेंगे; परास्त करेंगे । रा = का ।

भावार्थ—हे साँई ! ऐसे बहादुर बहुत महुँगे मोल पर मिलते हैं जिनके पास रहने से भय दूर, और दूर रहने से भय पास रहता है । स्वामी के काम के लिए हनूमान जैसे शूर-सामन्तों को पास रखने से भय कैसे पास रह सकता है ? खरे और महुँगे मूल्य पर बड़े क्षत्रियों को निकट बसाया है । जसवंत के वीर शत्रु-सैन्य का भजन करेंगे ।

२१. A इहा, CRD येहा । C भीचड़ा । S मोल । S महुँगै, RD मोहुँगे । SRD वास । A असाना, C आसना, S आसना । RA भय । S दूर । SRD पास । S भय । SRD काम । CS सामन्त । CRD वासिया । S मोल । SRD मुहुँगे । S शूर । A खड़ा । SAR भाजसी । C भीछ ।

२२

सिणगारी सन्नाह सँ विसकामणि वरियाम ।

वरि आई हाला वरण करण महा जुध काम ॥

काम संग्राम ची हाम जुध कामणी ।

घणा नर जोवती भोमि आई घणी ॥

महावळ धवळरा साहि वरमाळ तूँ ।

सवळ घड़ कड़तळोँ घणा सन्नाह सँ ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—सिणगारी = शृंगार की हुई, सजी हुई । सन्नाह = कवच; खिरह-वखतर । सँ = से । विसकामणि = विष कामिनी, विष कन्या । वरियाम = श्रेष्ठ । वरि = वरण कर । हाला = हाला वंशी; जसराज । वरण = विवाह । करण = करने को । ची = का । हाम = इच्छा । घणा = बहुत । जोवती = देखती हुई । भोमि = भूमि । घणी = बहुत । महावळ = महावली । धवळरा = हर भोल का पुत्र; जसाजी । साहि (सं० साध्) = धारण कर । वरमाळ = वरमाला । घड़ = सेना । कड़तळोँ = भालों की ।

भावार्थ—युद्ध के महान कार्य करनेवाले हे हाला (जसाजी) खिरह वखतर से सुसज्जित (भाला रायसिंह की सेना रूपी) विष कन्या से, जो तुझसे विवाह करने आई है, व्याह कर । युद्ध-कार्य की इच्छुक सेना-रूपी यह कामिनी अनेक वीरों को देखती हुई

२२. A सिणगारी, CR सिणगारिया । AC सन्नाह, S सिन्नाह । CR सौ । S विसकामण, RD विसकामण । SRD वर । A हालाँ । AS वन । C गम । SRD मड़ । A जोवती । S भोम । C हुंग । SRD साह । AR घणै ।

तेरी भूमि पर पहुँची है। हे ह्रस्वोळ के महाबली पुत्र ! मालाओं की झिरह बख्तर से बहुसज्जित सबल सेना-रूपी विष-कन्या की चरमाल को तू ग्रहण कर अर्थात् उसे हराकर विजय वैजयंती पहन ।

टि०—विष कन्या । वह स्त्री जिसके शरीर में इस आशय से कुछ विष प्रविष्ट कर दिये गये हों कि जो उसके साथ सभोग करे वह मर जाय । यहाँ कवि ने इस शब्द का प्रयोग रायसिंह की सेना के अर्थ में किया है ।

२३

फेरा लेतै फिर अफिर फेरी घड अणफेर ।
सीह तणी हरघवळ सुत गहमाती गहड़ेर ॥
गहड़ घड़-कामणी करै पाणै ग्रहण ।
करगि खग चाहतौ जुवा जूसण कसण ॥
कोपियै छाकियै चहर भड़ अहर करि ।
फुरळतै पिसण घड़ फेरवी अफिर फिरि ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—फेरा = भाँवर, विवाह के समय की परिक्रमा ।
फिर = फिरकर, घूमकर । अफिर = न फिरनेवाला, न मुड़नेवाला ।
फेरी = मोड़ दी । घड़ = सेना । अण फेर = न फिरने वाली । सीह =
रायसिंह । तणी = की । गहमाती = गर्वोन्मत्त । गहड़ेर = विकट
गंभीर । गहड़ = गंभीर; उद्धत । घड़-कामणी = सेना रूपी स्त्री ।

२३. SR अफर । C स्यव । CR गहै मती । SRD भड़ ।
AR करै । AD चाहतौ । SRD तग यगतर । A कोपिई । SRD कहर ।
SRD कर । AR फेरतै । SD प्रसण । SRD फर ।

पाणै प्रहण = पाणि ग्रहण; चिवाह । करगि = हाथ । खग=तलवार ।
वाहतौ = चलाता हुआ । जुवा = अलग । जूसण = जिरह; वखत;
कवच । कसण=कसन; बंद । कोपियै=कुपित होकर । छाकियै =
छककर; भरकर । चहर = श्रेष्ठ; उत्तम । भड़=वीर । अहर =
असमर्थ; बेकाम । फुरळतै = स्फूर्ति से । पिसण = शत्रु । फेरवी =
मोड़ दी; पीछे हटा दी ।

भावार्थ—हे हरधोळ के पुत्र, युद्ध से न फिरने वाले (जसाली) ।
भौवरी के समय परिक्रमा से फिरकर तू ने रायसिंह की न फिरने
वाली, गर्वोन्मत्त और उद्धत सेना-रूपी कामिनी को फेर दिया ।
उससे पाणिग्रहण कर अर्थात् भिड़कर अपने हाथ से तलवार
चलाकर तू ने उसके कवच (रूपी अंगिया) के बंद अलग कर
दिये । क्रोध में भरकर तू ने श्रेष्ठ वीरों को बेकाम कर दिया और
स्फूर्ति से शत्रुओं की न फिरनेवाली अर्थात् अजेय सेना को
मोड़ दिया ।

२४

चढ़ि पोरिस वर सोह चढ़ि चढ़ि रिण तोरणि चालि ।

कुंवारी घड़ कढ़तळों भूँझ भार भुज झालि ॥

झालियै भार भूँझारि भुजि झालियै ।

पाट ऊधौर हालों वखत पालियै ॥

पौह घणा भागलाई गई मुहराइ पड़ि ।

चाव गुर जसौ जिण वार वर सोह चढ़ि ॥ २४ ॥

२४. S चढ़ । RD पोरिस । RA चढ़ि । DA झूझ वरण ।
A कुंवारी । C झूझ । A झालिई । C झाले । CR अस्ति ।
SRD पौह । C जसै । CR जिणि ।

भावार्थ—युद्धामिलाषी, रणवीर, स्वामी-सहायक, अद्वितीय वीर और युद्ध में शत्रुओं को मारनेवाले वीका और सोम की प्रशंसा हुई। हाथ में तलवार धारण किये हुए और युद्ध में शत्रुओं का संहार करते हुए समर्थ वीर सोम और वीका को शूरवीरों ने सराहा। लड़ते हुए दोनों वीर टुकड़े-टुकड़े होकर छह गये। रायसिंह के इन बंधुओं की बड़े राजाओं ने प्रशंसा की।

३०

हेक पराया जव चरौ हालौ ऊगों सूर ।

दाढाळा भूँडण भगौ भागौ-भाखर दूर ॥

दूरि दळ देख जसवंत थइयौ दर्ई ।

कोड़ लग पाखन्या कटक आयौ कई ॥

हाक कुणि करै जसवंत सँ हलचलौ ।

उडियाँ लोह अंबर अडै हेकलौ ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—हेक=एक। हालौ=चलते हो, निकलते हो। दाढाळा=सूअर। भूँडण=शूकरी। भाखर=पर्वत। थइयौ=हुआ। दर्ई=दैव। कोड़=उमंग; जोश। पाखरथाँ=बख्तर युक्त घोड़े व सवार; घुड़ सवार। हलचलौ=हल चल करने वाला; ऊधमी; घड़त। लोह=हथियार।

भावार्थ—शूकरे कहती है कि हे शूकरो। एक तो तुम परायों के खेत में जौ चरते हो और दूसरे सूर्योदय हो जाने पर खेत से बाहर निकलते हो। परतु याद रखो कि तुम्हारा निवास-स्थान पर्वत दूर है। (इतने में) दूर से सैन्य-समूह, उमंग से भरे हुए

३०, RD एक। AR जौ। AD चालौ, R भागौ। S दाढाळा। RD परवत। S कोड़। RS कुणि। RD ऊडिया। RD एकलौ।

ई पुइ सवारों का दल, आया देख कर जसवंतसिंह दैन के समान प्रबल हो गया। उद्धत जसवंत सिंह के सामने कौन हुँकार कर सकता है? हथियार चलने पर वह तो अकेला ही व्याकाश से जा लगता है।

टि०—इस में म्याज स्तुति अलंकार है। निंदा के बहाने झूठी शूकर की प्रशंसा कर रही है। उसके कहने का अभिप्राय यह है कि हे शूकर! तुम इतने बहादुर हो कि दूसरों के खेत के जौ चरते हुए तुम्हें चर नहीं डगता। तुम रात में नहीं बल्कि दिन हो जाने पर भी बहुत देरी से, निशांक भाव से, जौ खाकर खेत के बाहर निकलते हो; और यह सब कार्य तुम अपने पड़ोस में नहीं बल्कि अपने रहने के स्थान से बहुत दूर इरमनों के बीच में जा कर करते हो।

३१

हे पणिहारी वापड़ी जहरी सँ वर जाय ।

केड़ै कटकाँ लूँवियाँ लायक मरसी आय ॥

आवसी जिकौ नहँ जावसी अपूठौ ।

महा मैमंत काळौ चखौ मजीठौ ॥

अणी चढ़ि खेति जसवंत सँ आहुड़ी ।

पिय नखै पौढ़सी नहीं पणिहारड़ी ॥३१॥

शब्दार्थ—वापड़ी=वेचारी; वापुरी। सँ=से। वरजाय=वर
हुआ है। केड़ै=पीछे। कटकाँ=खेनाओं के। लूँविया=बँधने पर;
लगने पर। मरसी=मरेगा। आवसी=आयगा।

३१. SR बचदी। D

SRD जिको। S नहि। F

D नहै। R नहै।

निवड़ = अत्यंत; अद्वितीय । भड़ = बहादुर । घणा = बहुत ।
पाड़तौ = गिराता हुआ । सोभियौ = शोभायमान होता है । विह-
लतै = जोश में । जाय लबदै = खड़ जाती है; टूट जाती है ।
सहस्र = हजार गुना । घाट = आकार । रै = के । जरद = कवच ।

भावार्थ—हे बहिन ! (लोहारिन) ! मेरे पति के कवच को
ढीला घड़ । वह अद्वितीय वीर पराई सेना को देखकर इस
तरह खिलता है जिस तरह कमल का फूल (सूर्य को देखकर
खिलता है) । वह महाभट बहुत वीरों को गिराता हुआ बहुत
शोभायमान होता है । जोश में हजार गुना बल बढ़ जाने से
कड़ी टूट जाती है । पति के शरीर के आकार का ढीला कवच घड़ ।

टि०—एक प्रति में 'बैनाणी' की जगह 'बेदाणी' पाठ है । हिंगल
भाषा में 'बेदाणी' का अर्थ है, लोहार । कवच बनाने का काम लोहार
का है, लोहारिन का नहीं । परंतु 'घदै' क्रिया स्त्रीलिंग की सूचक है ।
इसलिए हमने 'बैनाणी' पाठ को ग्रहण किया है । श्री अपने मन की
यात श्री ही को अधिक कहती है । इसलिए भी यह पाठ अधिक प्रादा
है । कविता की दृष्टि से तो इसमें अधिक कोमलता है ही ।

३४

केहरि छोटी बहुत गुण मोड़ै गयँदां माण ।
लोहड़ बड़ाई की करै नरां नखत परमाण ॥
नखत परमाण बाखान वाधौ नरै ।
आवगौ भूँझ रौ भार भुजि आपरै ॥
मेटणौ मीड़ भुंजि गयँद री मोटियाँ ।
आवड़ बल हतै कलाइयाँ छोटियाँ ॥३४॥

३४. SRD केहर । S छोटी । RD मोहीत । SRD नखत ।
S आवगौ । RD जूझो । SRD भुज । S आवड़ा ।

दार्थ—गयँदाँ=हाथियों के। मोड़ै=मर्दन करता है।
मान। लोहड़=हथियार। की=क्या। नरां नखत पर०
नक्षत्र के समान तेजस्वी पुरुष। परमाण=समान। नखद=
। बाधौ=सब। आवगौ=पूरा। झूम=लड़ाई। मेटणौ=
वाला। मोटियाँ=मोटी; भारी। छावड़ (सं० शाब्द प्र०
हि० छाव)=बालक। हतै=मार डालता है। कलाइयों=
की कलाइयों। छोटियाँ=छोटी।

भावार्थ—सिंह छोटा पर बहुत गुणी होता है। वह हाथियों
मान-मर्दन करता है। इसी तरह नक्षत्र समान तेजस्वी पुरुषों
को हथियार की क्या वड़ाई हो सकती है? सभी लोगों
से कहना है कि नक्षत्र के समान तेजस्वी पुरुष ही लड़ाई
पूरा बोझ अपनी मुजाओं पर धारण करता है। हाथियों
की भीड़ को मिटानेवाला सिंह का वधा उनको अपने हाथों
छोटी कलाइयों के बल से मार डालता है।

हि०—'नरां नखत परमाण' यह हिमाल नाया का एक पद्य
पर मुहावरा है। 'तेजस्वी पुरुष' के अर्थ में राजा ने जो पद्य
पर इसका प्रयोग किया है—

नरां नखत परमाण, जहाँ उन्हीं संके जात्र ।

जोबन लखी न मन, गवग नगर्त राजिया ॥

सड़िसी—लड़ेगा, २५
 सत्थौबत्थ—गुत्थम गुत्था, भिद्यत, १
 सह—ले, ४७
 सहण—लेने को, लेनेवाले, ३
 लांवी—लंबी, ४०
 लूबिर्यौ—बंधने पर, लगने पर, ३१
 लोढ़ि—छीनकर, १६
 लोह—हथियार, ३०, ४५
 लोहड़—हथियार, ३४
 लोहा—हथियार, १३, १७
 ज्यावै—जाता है, १६
 ज्यावणा—जाते हैं, जानेवाले, १३
 वगि—वर्गीकृत, इकट्ठा, भीड़, २६
 घट—घट-वृक्ष के समान फैला हुआ,
 बड़ा, ६
 घयण—आवाज़
 वरजाय—वरण हुआ है, ३१
 वरण—विवाह, १६, २२
 वरण—वर्ण, रंग, ४२
 वरणागियौ—वर्ण, रूपरंग, ठाटवाट
 ४३
 वरमाळ—वरमाला, २२
 वरसोह—श्रेष्ठ, शोभायुक्त; सुंदर,
 दुलहा, २४
 वरि—वरणकर, २२
 वरीयाम—श्रेष्ठ, जोरावर, ६, २२

वागी—वजी, दुई, ४
 वाट—रास्ता, १६, ४१
 वाढ़—वृत्तिका, कोट, ३२
 वाधौ—सब, ३४
 वात—बहानी, ४७
 वारौ—झोड़ो, ३
 वावियौ—वायु, ४५
 वावै—चलाती है, ४४
 वासि—निवास, पड़ोस, २१
 वासिया—बसाये, २१
 विकसै—खिलता है, बढ़ता है, ३३
 विखंड—अस्त-व्यस्त, नष्ट, ३२
 विटाळण—अष्ट करनेवाले, लजित
 करने वाले, १०
 विदाणी—पराई, दूसरे को, ९
 विदंता—लड़ते हुए, ४४
 विदतो—लड़ते हुए, लड़ाके, योद्धा
 वीर, २५
 विदवा—लड़ने को, ६
 वित—वित्त, वृत्ति, ४७
 विभाड़े—नष्ट करते हैं, छिन्न भिन्न
 करते हैं, २०
 विमळ—निर्मल, सुन्दर, ४५
 विरंग—फोका, ३६
 विरगिया—वीर, ४०
 विरद—यश, ख्याति, ३, ६

विसकन्या—विपकन्या, २५
 विसकामणि—विष कामिनी; विष
 कन्या, २२, २७
 विहसतै—जोश में, ३३
 विहसै—जोश में भरकर; उमंगित
 हो रहे हैं, २०
 विहूँ—दोनों, २९
 वीर-कलहल—वीरशब्द, ५
 वोसमौ—विषम, विस्मित, विभ्रान्त
 ९
 वै—निश्चय ही, सह, ४३
 घवै—दे, ४९
 संपत्तौ—संपन्न हुआ, सफलीभूत
 हुआ, ३५
 सकला—सकल; सब, ४५
 सत्र—शत्रु, १४, ४५
 सप्रहरां—शत्रुओं की १
 सत्रों चा—शत्रुओं के, ९
 सय—साथ में, ३६
 सनाह—कवच, कवचयुक्त, २१,
 ३३, ३९
 ससाह—कवच, २२
 समली—चील, २८
 समौ—समस्त, समान, ९
 सरणाई—शरण, शरणार्थ, १२
 सरस—सरिस, समान, ३६
 सरवहियौ—घड़ियों की सरवैया
 शाखा का, ३६

सरी—बाण, २३, २४
 सहि—सहन करना, ९
 सही—निश्चय ही, १, २०
 सहीक—निश्चय ही, ३९
 सहै—सहन करता है, ३७
 सहै—सब, ४६
 सौमलै—सुनकर, ९
 सांव—सामंत, ३७
 साजै—सजाकर, २७
 सादूली—शादूल, ९
 सापुरुसौरा—सापुरुषों का, ५०
 साबली—भाले, १६
 सामठा—मज्जवृत्त, २८
 सागही—सामने, ६, १०, १४
 ३५, ४
 सार—तलवार, ४२
 साराहिया—सराहना की, २९
 सावतौ—सामंत, २१
 साहि—धारणकर, २२
 सिध—सिद्ध, ३६
 सिणगारी—शृंगार की हुई; स
 हुई,
 मियाळ—शृंगार, सियार, १०
 सिर—सिरपर, ऊपर, ९, १४
 सींगाली—सींगवाला, ३२
 सीधू-राग—वीर रमणार्क एक
 विशेष, ४,

सीह—सिंह, १०
 सीह-सणी—रायसिंह की, २३
 सुजि—वह, ४७
 सुपह—राजा, ९, ४७
 सुवप—शरीर, १३, १७
 सुवर—सुन्दर, पति, ४९
 सुहदाह—योद्धाओं के १२, ४४
 सुहेलौ—सहल, आसान, ७
 सूँ—से, २२, ३१
 सूता—सोया हुआ, ४५
 सूरति—सूरत, आकृति, स्वरूप, २५
 सूरा—वीरों को, ८
 सूरौ—सूअरों के, ४०
 सेल—भाला, १९, ४२, ४५
 सो—वह २६
 सोक—वृष्टि, बौछार, मार, ४२
 सोन—सोना, १५
 सोमियौ—शोभायमान होता है, ३३
 सोवसी—सो सकेगी, १
 सोहड़—सुमेद, ८
 सोहड़ा तर्णा—बहादुरों की, ४७
 स्यामि—स्वामी, २१, ३७
 स्रोण—रक्त, ४४
 हदी—की, ३८
 हकौ—हाँक, ४
 हणवत—हनुमान, २१

हयै—मारता है, ११
 हतै—मार डालता है, ३४
 हथ—हाथ, ५
 हलचलां—उपद्रव, लड़ाई, १
 हलचलौ—हलचल करनेवाला,
 ऊधमी, उद्धत, ३०
 हला—आक्रमण, दौड़धूप, आवाज़; ५
 हाक—हाँक, हुँकार, ९, ३८
 हाकलियाँ—हाँक लगाने पर, १८
 हाथल—हाथ का पंजा, ११
 हाथलै—पंजे से, ४६
 हाम—इच्छा, २२
 हाल्ला—हालावशी चित्रिय, १, २२, २४
 हालौ—चलते हो, निकलते हो, ३०
 हींस—हिनहिनाहट, ३
 हुवत—हो रही है, ५
 हुवै—होकर, १८
 हु—मैं, ४५, ४६
 हुँकल—हुँकार, ५
 हुँकल कलल—चिल्लाहट, ५
 हुँकलै—गूँज रहा है, हो रहा है, ५
 हेक—एक, ७, १० ३०, ३२
 हेकणि—एक, ११
 हेकलौ—अकेला, ४०
 हेकौ—एक, १०
 हेतणौ—प्रसन्न हुआ, ४३
 हैजमा—सेना, ४१

॥ लेखक की अन्य कृतियों पर सम्मतियाँ ॥

राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा

१

पंडित मोतीलालजी मेनारिया एम. ए. ने 'राजस्थानी-साहित्य की रूपरेखा' नामक ग्रंथ लिखकर हिंदी-साहित्य का बड़ा उपकार किया है, इसमें सदेह नहीं। इसमें पूर्व राजस्थानी साहित्य से संबंध रखनेवाला ऐसा सुगम, गवेषणा पूर्ण तथा ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टियों से अक्षुब्ध ग्रंथ दूसरा नहीं लिखा गया। इसमें प्राचीन-काल से लगाकर अब तक के प्रायः सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजस्थानी साहित्यिकों का समावेश हुआ है। उनकी सचिप्त जीवनी के साथ-साथ इसमें प्रत्येक की शैली और विशेषताओं का अक्षा परिचय कराया गया है, जो राजस्थानी-साहित्य के विद्यार्थियों और जिज्ञासुओं के लिए बड़ा उपयोगी है। वर्तमान लेखकों और कवियों का सचिप्त परिचय इसकी विशेषता है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट के रूप में फुटकर कवियों की रचनाओं के अवतरण दिये गए हैं। राजस्थानी साहित्य के निर्माण में इनका भी बड़ा हाथ रहा है और इनमें से कितनों हों के नाम अब तक अज्ञात थे।

इस ग्रंथ के प्रणयन में लेखक ने काफ़ी श्रम किया है, विषय गंभीर होने पर भी इसमें कहीं-कहीं जटिलता अथवा दुरुहता नहीं आने पाई है। पुस्तक वस्तुतः बड़े मनोरंजक ढंग से लिखी गई है और आरंभ से अन्त तक लेखक की विद्वत्ता और विवेचना शक्ति का परिचय देती है।

हर्ष का विषय है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने इसे उत्तमा परीक्षा की पाठ्य पुस्तकों में स्थान दे दिया है। मुझे पूरा भरोसा है कि शीघ्र ही इसे हिन्दी की अन्य परीक्षाओं में भी स्थान मिल जायगा।

मैं लेखक को ऐसा सर्वोत्तम सुन्दर एवं उपयोगी ग्रंथ लिखने के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि वे भविष्य में भी इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में प्रयत्नशील रहेंगे ।

—गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

२

The book contains a vast deal of important information, such as is only to be gained by long-continued study on the spot. It will be especially useful to the students in Indian colleges and universities. I used to long for such a book when I was in India.

—George A. Grierson

राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज

१

पं० मोतीलाल मेनारिया द्वारा लिखे गये 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' नामक ग्रंथ का पहला भाग आलोचनार्थ हमारे सामने है । 'राजस्थानी-साहित्य की रूप रेखा' तथा 'डिंगल में घोर-रस' आदि पुस्तकें लिखकर मेनारियाजी पहले ही बहुत-कुछ प्रसिद्धि पा चुके हैं । अब इस ग्रंथ के द्वारा तो वे राजस्थान के उन साहित्य-सेवियों में अपना स्थान बना लेंगे, जो परिश्रम, अध्ययन और लगन के साथ अपने प्रान्त के प्राचीन साहित्य के शोध, उद्धार, संपादन तथा प्रकाशन के कार्य में लगे हुए हैं । उदयपुर का हिन्दी-विद्यापीठ भी, जिसने राजस्थान-हिन्दी साहित्य-सम्मेलन जैसे आशोजन को संगठित किया है, इस महत्वपूर्ण और खर्चीले कार्य के प्रारम्भ और अनुष्ठान के लिए निःसंदेह प्रान्त के अभिनन्दन और श्रद्धा का भागी है । यदि राजस्थान में ऐसी दस पाँच संस्थाएँ भी स्थापित हो जायँ और एक सामान्य योजना बनाकर प्राचीन साहित्य के उद्धार के काम में लग जायँ

तो रत्नों के समान मूल्यवान् राजस्थानी साहित्य केवल नष्ट होने से ही न बच जाय, बल्कि प्रान्त के नए साहित्यिक जागरण और उत्पादन में भी बहुत बड़ी सहायता मिले ।

प्रस्तुत पुस्तक में उदयपुर राज्य के दो मुख्य भांडारों-सरस्वती-भांडार और वाणी-विलास तथा अन्य एक-दो निजी भांडारों के चुने हुए हस्तलिखित ग्रंथों का विवरण है । इसमें दिया १७० ग्रंथों और कुल मिला कर २०० प्रतियों का विवरण प्राचीन साहित्य के इतिहास तथा कथा वस्तु के अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त महत्व का प्रतीत होता है । इस विवरण-ग्रन्थ को मुख्य-मुख्य विशेषताएँ हैं—

- (१) अब तक की राजस्थान की प्राचीन साहित्य सम्बन्धी खोज के कार्य का तथा उसमें सलग्न व्यक्तियों का महत्वपूर्ण और रोचक विवरण
- (२) 'पृथ्वीराज रासो' की भिन्न-भिन्न ९ प्रतियों का विशद रूप से परिचय, (३) सूरदास, बिहारी आदि से सम्बन्ध रखनेवाली बहुमूल्य प्रतियों का उल्लेख (४) कई एक काम के नए ग्रन्थों का उल्लेख और कई एक नए तथा पुराने कवियों के अज्ञात ग्रंथों का परिचय ।

इसमें दिया गया नए कवियों का परिचय भी बड़ा उपयोगी है । ग्रंथों के चुनाव में भी सभी विषयों की ओर ध्यान रखा गया है । हाँ, ढिंगल के ग्रंथ अवश्य ही इसमें कम दिए गए हैं, शायद अगले भागों में उनका आधिक्य रहे ।

इस ग्रंथ का विषय-विवेचन मेनारियाजी की सर्वतोमुखी प्रतिभा और विद्वत्ता को प्रकट करता है । यह साहित्य-प्रेमियों के लिए निधि और साहित्यिक शोध में लगे विद्वानों के लिए सहायक और पथ प्रदर्शक सिद्ध होगा । आशा है, साहित्य प्रेमी मेनारिया जी के इस ग्रंथ से लाभ उठाकर उनका परिश्रम सफल करेंगे, जिससे वे और उनका विद्यापीठ इसके अगले भागों के सम्पादन और प्रकाशन में समर्थ हो सके ।

—विशाल भारत

हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का काम बहुत वर्षों से बनारस की नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा हो रहा है, और निश्चय ही समा ने इस दिशा में न केवल पथ प्रदर्शन किया है बल्कि बहुत मूल्यवान् कार्य-संपादन किया है। फिर भी अभी इतना और काम करने को है कि अनेक संस्थाओं द्वारा यह कार्य अग्रसर किया जाय तो अच्छा हो। श्री मोतीलाल मेनारिया के सुझाव पर उदयपुर के हिंदी विद्यापीठ ने राजस्थान में हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों की खोज का प्रशसनीय कार्य उठाया है, और मेनारिया जी द्वारा तैयार की हुई रिपोर्ट का जो पहला भाग हमारे सामने है उसे देखकर आशा बंधती है कि इससे हिंदी का निश्चय ही बड़ा हित होगा।

मेनारिया जी ने मेवाड़ के तीन प्रसिद्ध राजकीय पुस्तकालयों अर्थात् सरस्वती भंडार, सज्जन बाणी विज्ञान, और विक्टोरिया हॉल लाइब्रेरी, की हिंदी-हस्तलिखित पुस्तकों के लिए मुख्यतया जाँच की। उनके परिश्रम के फलस्वरूप हमें १७५ ग्रंथों के परिचय प्राप्त हुए हैं। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि इनमें ८० ग्रंथ बिलकुल नए हैं। यदि यह काम जारी रहा, और हमें पूरी आशा है कि जारी रहेगा, तो आगे चल कर हमें अवश्य ही और भी बहुत से नए ग्रंथों का पता चल सकेगा।

समालोच्य खोज-रिपोर्ट में पृथ्वीराज रासो, सूरसागर, बेलि किसन रुक्मणी की तथा बिहारी सतसई की एक से अधिक प्रतियों के परिचय मिलेंगे। मूल प्रतियों की सहायता से इन ग्रंथों के पाठ-शोध आदि में बड़ी सहायता मिलनी चाहिए। प्रत्येक ग्रंथ कहाँ सुरक्षित है यह भी इस रिपोर्ट में बता दिया गया है।

मेनारिया जी ने अपना कार्य बड़े मनोयोग और शास्त्रीय ढंग से संपादित किया है और इसके लिए वह हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

—सम्मेलन-पत्रिका

राजस्थान के लंबे चौड़े रेगिस्तान में जो विस्तृत हिंदी काव्य-सागर
 फैला रहा है उसकी कुछ लहरों का परिचय हमें श्री मेनारियाजी ने
 इस किताब में दिया है। इसमें मेवाड़ के तीन किताब-घरों—सरस्वती
 भंडार, सज्जनवाणी विलास और विषटोरिया डॉलर लाइब्रेरी में रखी
 हुई हिंदी की हाथ लिखी किताबों की फहरिस्त और उनका परिचय
 दिया गया है। लेखक के शब्दों में इनमें सरस्वती भंडार सबसे पुराना
 और बड़ा किताब घर है। महाराणा भीमसिंह (सं० १८३४-८५) के
 वक्त में कर्नल रॉड ने इस किताब घर को टटोला था और कुछ किताबों
 की नकल करवाकर वे इंग्लैंड ले गये थे। उसके बाद ठीक से किसी ने
 भी इसकी जाँच नहीं की। यह उस राह में पहला कदम है। और दो
 किताब घर छोटे-छोटे हैं। लेकिन छोटे होने से उनकी अहमियत
 कम नहीं हो जाती। उदयपुर के और ग्राहवेड किताब घरों से भी लग
 भग इस किताबों के विवरण इसमें दिये गये हैं।

इस खोज-रिपोर्ट में जिन किताबों और कवियों का विवरण दिया
 गया है उनमें कुछ तो ऐसे हैं जिनका नामों-निशान हमें इसके पहले
 कहीं नहीं मिला था। कुछ किताबों की ऐसी पोथियाँ इस खोज-रिपोर्ट
 में दी गई हैं जिनकी अहमियत बहुत ज़्यादा है। मलिक मुहम्मद
 जायसी को गौर से पढ़नेवाले रामचंद्र शुक्ल कृत जायसी ग्रंथावली पर
 कितना मुँसलाते हैं, यह उन्हीं के दिनों को मालूम है। लेकिन क्या
 करें? न होने से तो कामा पेठा ही भला होता है। इस खोज रिपोर्ट
 में जायसी की पटुमावली की एक पोथी का उल्लेख है। अगर उसकी
 मूल प्रति मानकर सम्पादन किया जाय तो जायसी ग्रंथावली के पाठ
 से भिन्न पाठ तैयार होगा और शायद वह ज़्यादा सच्चा होगा।
 'शृंगारराज रासी की कहानों भी कुछ ऐसी ही है। बिहारी-सतसई के
 छंदों पर हुए सबसे अच्छे पाठ 'बिहारी-रवाकर' की भाषा में मेनारियाजी के

ही शब्दों में 'बिहारी की नहीं बरन् रत्नाकर की है'। इस खोज रिपोर्ट में इन किताबों की अच्छी पोथियों का विवरण है।

पं० मोतीलाल मेनारिया ने बड़ी जिम्मेदारी के साथ इन पोथियों को पढ़ा और यह रिपोर्ट लिखी है। हमें आशा है कि नागरो पचासभा, काशी की तरह उन्होंने कहीं पर भी लापरवाही नहीं दिखाने है। टैसीदरो के बाद राजपूताने में काव्य रस को धारा को खोजने यह पहली कोशिश है। हमारी कामना है कि हिंदी के विद्वानों पोर्ट से सच्चा लाभ उठावें और मेनारियाजी इस काम को और आगे बढ़ा सकें। यह किताब का पहला हिस्सा ही है।

—विश्व-

४

..... Looking to the gigantic character of work to be done, and considering the meagre resources of the Udaipur Hindi Vidyapitha, or of individual workers in the field, great credit is due to pandit Motilal Menaria M. A., who has already published an interesting book named *Dimen Vir Ras*, for writing and publishing this book, *Rajasthan me Hindi ke Hastalikhut grah ki Khoj*. He has devoted much time and energy to the discovery of old Hindi manuscripts in Rajasthan and all lovers of Hindi literature are under obligation to him for the admirable work he is doing. The present book "The Search for Hindi Manuscripts in Rajasthan" is an important contribution

